नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक अखबार • वर्ष 7 अंक 11
दिसम्बर 2005 • 3 रुपये • 12 पृष्ठ

बिहार में लालू राज खत्म, अब नीतीश जनता की सवारी गाँठेंगे

पूँजीवादी जनतंत्र के घिनौने खेल-तमाशे से ऊबी जनता क्रान्तिकारी विकल्प चाहती है!

सम्पादक

बिहार में लालू राज के खात्मे और नीतीश कुमार की ताजपोशी से प्रदेश की मेहनतकश जनता को क्या मिला? कुछ नहीं। उसके लिए इस 'सत्ता-परिवर्तन' का अर्थ इससे अधिक कुछ नहीं है कि पूँजीवादी राजनीतिक लुटेरों के एक गिरोह की जगह दूसरे गिरोह को कुर्सी पर बैठने का अवसर मिल गया है। इस सच्चाई को आम लोग अब अपने अनुभव से ही जान चुके हैं कि पूँजीवादी चुनावों से सरकारें तो बदल जाती हैं लेकिन आर्थिक-राजनीतिक सत्ता के चरित्र और उसकी बनावट-बुनावट में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। 'विकास और सुशासन' के लुभावने नारों और 'साफ-सुथरी' छवि की आड़ में नीतीश कुमार की सरकार भी शहर और देहात के सम्पत्तिवान वर्गों के हितों की चौकीदारी ही करेगी। देशी-विदेशी पूँजीपतियों द्वारा प्रदेश की प्राकृतिक सम्पदा और सस्ते श्रम की लूट का कारोबार बदस्तूर जारी रहेगा।

इस सच्चाई को आम जनता की आँखों से ओझल करने के लिए झूठ का उत्पादन करने वाले तमाम कारखाने (यानी समूचा बुर्जुआ मीडिया) पूरे जोशो-खरोश के साथ यह प्रचारित कर रहे हैं कि चुनाव आयोग की मेहरबानी से बिहार में 'लोकतंत्र' के प्रति जनता की आस्था बहाल हो गयी है। तमाम खबरिया चैनलों पर 'धुरन्धर' राजनीतिक विश्लेषक 'निष्पक्ष और शान्तिपूर्ण ढंग' से बिहार में चुनाव सम्पन्न करा लेने के लिए चुनाव आयोग को लख-लख बधाइयाँ दे रहे हैं। जबकि असलियत यह है कि आधी से अधिक जनता ने पूँजीवादी जनतंत्र के इस तमाशे में कोई दिलचस्पी ही नहीं दिखायी। चुनाव आयोग की सारी कवायदों और भारी-भरकम सुरक्षा इन्तजामों के बावजूद 46 प्रतिशत से अधिक मतदाता वोट डालने नहीं गये। जिन्होंने वोट डाले उन्होंने नीतीश कुमार की नीतियों के समर्थन में वोट नहीं डाले। आम लोगों को भी पता है कि लालू या नीतीश की बुनियादी नीतियों में कोई फर्क नहीं है। अब नीतियों के सवाल पर वोट डाले भी नहीं जाते। लोगों ने मुख्यतः जातिगत या धार्मिक समीकरण के आधार पर वोट डाले। कुछ हद तक लालू विरोधी नकारात्मक वोटिंग भी हुई। जातिगत या धार्मिक आधारों पर मतदाताओं के इस ध्रुवीकरण को लोकतंत्र की सफलता साबित करने के लिए आजकल मीडिया प्रेमी बुद्धिजीवी 'सोशल इंजीनियरिंग' शब्दावली का इस्तेमाल कर रहे हैं। जैसे चोरी को 'चौर्य कला' कह देने से वह पवित्र कर्म बन जायेगा।

असलियत यह है कि 'निष्पक्ष और शान्तिपूर्ण' ढंग से सम्पन्न कराया गया बिहार का चुनाव पूँजीवादी जनतंत्र के प्रति बहुसंख्यक जनता की पूर्ण अनास्था का सूचक है। चुनाव के नतीजे भी व्यापक मेहनतकश जनता की वास्तविक इच्छा को जाहिर नहीं करते। बिहार चुनावों से जाहिर यह हुआ है कि पूरे देश की तरह बिहार की आम मेहनतकश जनता भी "लोकतंत्र" की नौटंकी से ऊब चुकी है। वह केवल सरकारें बदलना नहीं बल्कि क्रान्तिकारी बदलाव चाहती है। वह लूट के समूचे तंत्र का खात्मा चाहती है।

लेकिन देश की चुनावी राजनीति की गन्दगी से आजिज मध्यवर्ग के बहुतेरे भले मानुषों के लिए बिहार चुनावों के दौरान चुनाव आयोग की कवायदें 'लोकतंत्र की गरिमा' बहाल करने वाली कवायदें नज़र आयीं। इन लोगों की नज़रों में चुनाव आयोग के सलाहकार के.जे. राव नये नायक बनकर उभरे हैं। शेषन और खैरनार की कड़ी में जुड़ने वाला अगला नाम लेकिन के.जे. राव की सारी अति-उत्साही कवायदें कई दर्जन अपराधियों को विधानसभा में घुसने से नहीं रोक पायीं। खुद 'श्रीमान साफ-सुथरे' नीतीश कुमार के सत्तारूढ़ गठबन्धन के टिकट पर जीतकर दो दर्जन से अधिक हिस्ट्रीशीटर विधानसभा पहुँच चुके हैं। नीतीश कुमार उन्हें मंत्री बनाने से परहेज कर केवल 'गुड़ खायें पर गुलगुले से परहेज' वाली कहावत ही चरितार्थ कर रहे हैं।

दरअसल, पूँजीवाद जनतंत्र के खेल में चुनाव आयोग की भूमिका महज एक रेफरी की होती है। इस खेल में शामिल होने की जो शर्तें हैं, जो नियम और तौर-तरीके हैं उसके चलते गरीब मेहनतकश जनता इस खेल में खिलाड़ी के रूप में शामिल ही नहीं हो सकती। वह इस खेल में महज एक मोहरा है या अधिक से अधिक मूकदर्शक। खिलाड़ी तो मालदार या हैसियतदार लोग ही हो सकते हैं। एक अच्छे रेफरी के बतौर चुनाव आयोग की भूमिका बस इतनी होती है कि खिलाड़ी 'फाउल' न खेलें जिससे खेल में दिलचस्पी बनी रहे और मोहरे बिदक न जायें। पिछले कई चुनावों से लगातार इस खेल में शामिल खिलाड़ियों के बीच फाउल खेलकर ही जीतने की होड़ मची हुई है। इसलिए, चुनाव आयोग अति सजग और सक्रिय हो गया है, इस चिन्ता से ग्रसित होकर कि कहीं सारा खेल ही चौपट न हो जाये। शेषन, खैरनार और के. जे. राव इसी चिन्ता की कोख से पैदा होते हैं। इन सज्जनों की भूमिका का कुल जमा-जोड़ यही निकलता है कि वे पूँजीवादी जनतंत्र के घिनौने-दागदार चेहरे पर कुछ रंग-रोगन पोतकर उसे रूपवान बनाकर पेश करें जिससे लोगों में इसके प्रति गिरती दिलचस्पी फिर से बहाल हो सके। बिहार चुनाव के दौरान चुनाव आयोग की भूमिका यही रही है।

लेकिन जब पूँजीवादी जनतंत्र के खिलाड़ी 'फाउल' को ही नियम मानकर खेलने लगें जब चुनाव आयोग के रेफरी क्या करेंगे? जब चेहरे के दाग-धब्बे कोढ़ बनकर फूटने लगे तब उन पर कौन-सा लेप टिक सकेगा? जाहिर है ऐसे में चेहरा और घिनौना हो उठेगा। बिहार में चुनाव आयोग की कारगुजारियों ने पूँजीवादी जनतंत्र का ऐसा ही विद्रूप प्रस्तुत किया। चप्पे-चप्पे पर अर्द्धसैनिक बलों की तैनाती कर बूथ लुटेरों और नक्सलाइटों से अभयदान के आश्वासन के बावजूद आधे से अधिक लोगों ने जनतंत्र के इस खेल में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी।

दरअसल, देश की पूँजीवादी चुनावी राजनीति का पतन आज उस मुकाम पर पहुँच गया है कि राजनीतिक पार्टियों और अपराधियों के संगठित गिरोहों के बीच कोई फर्क नहीं रह गया। भूमण्डलीकरण के इस दौर में शासक पूँजीपति वर्ग

(पेज 8 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

स्तालिन की वर्षगाँठ पर
स्तालिन का नाम एक शताब्दी बाद भी पश्चिम की नींद हराम कर रहा है — पृ. 9
माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस पर
माओ की कविताएँ (विस्तृत टिप्पणियों सहित) — पृ. 10-11
संचार माध्यमों में सूचना का ब्लैकआउट — पृ. 3
अमेरिकी हुक्मरानों के मानवता विरोधी अपराध — पृ. 4
श्रम कानूनों में बदलाव के लिए पूँजीपतियों की झटपटाहट — पृ. 12
फ्रांस की सड़कों पर लावा बनकर बहता धधकता जनाक्रोश — पृ.12

राजस्थान और मध्यप्रदेश की भाजपा सरकारें

प्रदेश को श्रमिकों के लिए यातना शिविर में बदल रही हैं!

कार्यालय संवाददाता

यूँ तो सभी प्रदेशों की सरकारें देशी-विदेशी पूँजीपतियों की लूट को बेलगाम करने के लिए एक-दूसरे से होड़ कर रही हैं लेकिन राजस्थान और मध्य प्रदेश की भाजपा सरकारें सबको पीछे छोड़ती जा रही हैं। ये दोनों प्रदेश मजदूरों के लिए यातना शिविर बनते जा रहे हैं।

इन दोनों प्रदेशों की सरकारों द्वारा हाल ही में लिए गये कुछ फैसलों और कारगुजारियों से इसे आसानी से समझा जा सकता है। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पिछले दिनों जारी एक अधिसूचना के अनुसार मजदूर अब अपनी शिकायतों को सीधे श्रम न्यायालयों में नहीं ले जा सकते! इस अधिसूचना के अनुसार वस्त्र उद्योग, लौह व इस्पात, इलेक्ट्रिकल गुड्स, शक्कर, सीमेण्ट, विद्युत ऊर्जा उत्पादन, पारेषण एवं वितरण, लोक परिवहन व इंजीनियरिंग उद्योगों को मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम की अनुसूची से बाहर कर दिया गया है। अब मजदूरों को अपने मामलों को श्रम न्यायालय ले जाने के पूर्व शासन से अनुमति लेनी होगी।

मध्य प्रदेश सरकार के इस फरमान का क्या असर होगा इसे आसानी से समझा जा सकता है। नंगई के साथ पूँजीपतियों की हिमायत और हिफाजत में जुटा शासन मजदूरों को भला क्यों अनुमति देगा कि वे अपने मामले श्रम न्यायालय में ले जायें। ऐसा नहीं है कि श्रम न्यायालयों से मजदूरों को न्याय मिल ही जाता था लेकिन फिर भी कुछेक मामलों में न्यायालय जिन्दा मक्खी नहीं निगल पाते थे और मजदूरों द्वारा लड़कर जो कानूनी अधिकार हासिल किये गये थे उनका कभी-कभार लाभ उन्हें मिल जाया करता था। लेकिन नयी अधिसूचना ने सारे दरवाजे बन्द कर दिये हैं।

राजस्थान में प्रदेश सरकार ने पूँजीपतियों

(पेज 7 पर जारी)

आपस की बात

पूँजीवाद के स्वर्ग में नरक का नजारा

पिछले दिनों न्यू ओरलियंस में आये तूफानों ने पूँजीवाद के स्वर्ग 'अमेरिका' की समृद्धि के चिथड़े को उघाड़ दिया एक तरफ अमेरिकी शासक वर्ग के पास न्यू ओरलियंस की जनता के आँसू पोंछने के लिए फूटी कौड़ी भी नहीं है दूसरी तरफ इराकी जनता को बरबाद करने के लिए खरबों रुपये युद्ध में झोंके जा रहे हैं।

मध्यवर्ग के नौजवानों के सपनों के देश अमेरिका की सच्चाई यह है कि पूरी अमेरिकी आबादी का 12.7 प्रतिशत हिस्सा गरीब है। अगर नस्ली आधार पर वर्गीकरण किया जाय तो हिस्पानी (दक्षिण अमेरिकी मूल के लोग) 22 प्रतिशत तथा काले 25 प्रतिशत हैं। ध्यान देने की बात यह है कि दक्षिणी राज्य न्यू ओरलियंस हिस्पानी और अश्वेत बहुल राज्य है तथा कुल अमेरिकी आबादी में अश्वेत 12 प्रतिशत हैं।

इस साम्राज्यवादी देश में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लगभग तीन करोड़ 70 लाख लोग भुखमरी के शिकार हैं। यह संख्या कनाडा या मोरक्को जैसे देशों की आबादी के बराबर है। पूँजी की दुनिया में सबसे अमीर और ताकतवर देश में बेरोजगारी और तबाही का यह हाल है कि 2001 के बाद से उद्योग-धन्धों में 27 लाख लोग बेरोजगार हुए हैं। अमीर-गरीब की खाई इतनी चौड़ी हुई है कि यहाँ एक आम मजदूर और कम्पनी के आला अफसर की तनख्वाह में 185 गुना का अन्तर है।

जैसा कि आमतौर पर हमेशा होता रहा है, लुटेरी व्यवस्थाएँ जनता की बगावती चेतना को कम करने के लिए धर्मार्थ संस्थाएँ और सेवा संस्थाएँ चलाया करती हैं। ऐसा ही काम अमेरिकी चर्च और एनजीओ संस्थाएँ कर रहीं हैं। भूखों को मुफ्त खाना और बेघर लोगों के लिए स्थानीय म्युनिसिपल रोल्टर (पढ़िये इंसानी काँजी हाउस) बने हैं, जहाँ रात गुजार सकें। लेकिन नागरिक परिभाषाओं के दायरे से बाहर रहने वाले लोग यहाँ रात गुजारना पसन्द नहीं करते बल्कि वे सड़कों पर रहना बेहतर समझते हैं।

तो यह है पूँजीवाद के सबसे बड़े स्वर्ग की नरक कथा। मीडिया के लाख छुपाने के बावजूद सच्चाई उघड़ कर सामने आती रहेगी कि पूँजीवाद मानवद्रोही सभ्यता है। दुनिया से इसे जितना जल्दी खत्म किया जाय उतना ही अच्छा है।

कृष्ण बिहारी
कल्याण, मुम्बई

बिगुल के पाठक साथियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'बिगुल' के पिछले सात वर्षों का सफर तरह-तरह की कठिनाइयों-चुनौतियों से जूझते गुजरा है। इस दौरान अनेक नये हमसफर हमारी टीम से जुड़े हैं और पाठक-साथियों का दायरा भी काफी बढ़ा है। कहने की जरूरत नहीं कि अब तक का कठिन सफर हम अपने हमसफरों और शुभचिन्तकों के संग-साथ के दम पर ही पूरा कर सके हैं। हालात संकेत दे रहे हैं कि आगे का सफर और अधिक कठिन और चुनौती भरा ही नहीं बल्कि जोखिमभरा भी होगा। हमें विश्वास है कि हम अपने दृढ़संकल्प और हमसफर दोस्तों की एकजुटता के दम पर आगे ही बढ़ते रहेंगे।

'बिगुल' अपने पुरअसर तेवर और अपने विशिष्ट जुझारू अंदाज के साथ आपके पास नियमित पहुंचता रहे, इसके लिए अखबार के आर्थिक पहलू को और अधिक पुख्ता बनाना जरूरी है। जाहिर है कि यह अपने संगी-साथियों और शुभचिन्तकों की मदद के बिना मुमकिन नहीं। हमारी आपसे पुरजोर अपील है कि :

- बिगुल के स्थायी कोष के लिए अधिकतम संभव आर्थिक सहयोग भेजें।
- जिन साथियों की सदस्यता समाप्त हो चुकी है वे यथाशीघ्र नवीनीकरण करा लें।
- बिगुल के नये सदस्य बनायें।
- बिगुल के वितरण को और व्यापक बनाने में सहयोग करें।
- कुछ वितरक साथियों के पास बिगुल के कई अंकों की राशि बकाया है। इसे यथाशीघ्र भेजकर बिगुल नियमित प्राप्त करना सुनिश्चित कर लें।

सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। बैंक ड्राफ्ट 'बिगुल' के नाम से भेजें।

—सम्पादक

घर से दूर, मजबूर मजदूर

दिल्ली के विश्वास नगर इलाके में एक गारमेण्ट फैक्ट्री में आग लगने से हुई 12 मजदूरों की मौत ने फिर से देश भर में काम कर रहे प्रवासी मजदूरों की हालत के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया है।

पिछड़े इलाकों, खासकर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से गये हुए मजदूरों पर अत्याचार और उनकी मौतों के मामले अक्सर देश भर में होते रहते हैं जैसे कि आजकल केरल में विदेशी पैसे के जोर से खूब निर्माण कार्य हो रहा है जिसकी वजह से सस्ते मजदूरों की वहाँ काफी मांग है। गरीबी और पिछड़ेपन के दलदल में फँसे पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से हजारों की संख्या में ठेकेदारों द्वारा लालच देकर मजदूर केरल भेजे जा रहे हैं। निर्माण-स्थलों पर इन्हें जानवरों के रहने लायक जगहों पर टिका दिया जाता है। इन जगहों पर बुनियादी सुविधाएँ नाममात्र की भी नहीं होती हैं। छोटे-छोटे अन्धकारमय दड़बेनुमा बाड़ों में ये मजदूर रह रहे हैं। अमानवीय व्यवहार, मनमानी मजदूरी देना और पैसे काट लेना तो आम बात है। काम के घण्टे भी कोई निश्चित नहीं हैं। इन्हीं हालात में पिछले दिनों एक लोमहर्षक घटना में मजदूरों के रहने के बाड़ों में आग लग जाने से 17-18 मजदूर जल कर मर गये। ठेकेदारों की कोशिशों से मामला दबा दिया गया। बाकी मजदूर मजबूरन उन्हीं परिस्थितियों में काम कर रहे हैं। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को ऐसे मामलों में ना इंसाफ मिल पाता है और न राहत। ऐसे प्रवासी मजदूरों का स्थानीय आधार न होने के कारण स्थानीय प्रशासन के साथ-साथ मजदूर संगठन और यूनियनें भी दिलचस्पी नहीं लेती हैं। नतीजतन खून का घूँट पीकर ये मजदूर डर के साये के नीचे अपनी और अपने परिवार की रोजी-रोटी के लिए खट रहे हैं।

इसी प्रकार अलंग (गुजरात) में जहाज तोड़ने के काम में हजारों प्रवासी मजदूर लगे हुए हैं। वे भी इसी तरह की मुश्किल परिस्थितियों में रहते हैं। रहने की जगह बेहद गन्दी और सेहत के लिए घातक होने के बावजूद इन्हें चिकित्सा की कोई सुविधा प्रायः नहीं मिलती हैं। और तो और स्क्रैप तोड़ने जैसे खतरनाक काम करने के दौरान अक्सर घातक चोटें लगती रहती हैं जिनका कोई मुआवजा मिलना तो दूर, ढंग से इलाज भी मालिकों/ठेकेदारों द्वारा नहीं करवाया जाता है। पिछले दिनों गाजियाबाद में भूषण स्टील में हुई मौतों का मामला भी इसी तरह का है।

इसी तरह दिल्ली में उत्तर प्रदेश और बिहार के गाँवों से लाकर बच्चों से तहखानों में बन्द करके काम करवाया जा रहा है। पिछले दिनों पूर्वी दिल्ली के जाफराबाद इलाके से ऐसे कई बच्चे मुक्त कराये तो उनके बयान रोंगटे खड़े कर देने वाले थे। मालिकों को भी ऐसे जमकर निचोड़ने और विरोध न कर पाने वाले प्रवासी मजदूर आसान शिकार लगते हैं। दूसरे अपने घर से दूर इनकी बात पर प्रशासन से लेकर सरकार तक कोई ध्यान नहीं देता है। पेट की आग इन्हें हर दर्द को झेलने का आदी बना देती है।

प्रवासी मजदूरों की मजबूरी का फायदा मालिकों/ठेकेदारों द्वारा खूब जमकर उठाया जाता है। कम मजदूरी और खराब से खराब परिस्थितियाँ होने के बावजूद संगठित न होने कारण ये कुछ नहीं कर पाते हैं। बरसों-बरस रहने के बावजूद ये प्रवासी उस जगह के लोगों के लिए हमेशा पराये रहते हैं। अक्सर इन्हें बाहरी मानकर तिरस्कार से देखा जाता है। इन्हें अपमानजनक लहजे में 'बिहारी' और 'भैया' पुकारा जाता है। असम में तो प्रवासी मजदूरों को मार देने तक की घटनाएँ हुई भी हैं।

इन मजदूरों के बारे में पुलिस-प्रशासन से लेकर मीडिया-न्यायपालिका तक का जो रवैया होता है वह कोई छुपी बात नहीं है। ऐसी मौतें या दुर्घटनाएँ होने पर सारी पार्टियों के नेता अपनी राजनीति चमकाने के सिवा कुछ नहीं करते हैं। यह लेकिन इन हालातों से निराश होने की भी जरूरत नहीं है। अपनी मेहनत के दम पर बड़े-बड़े शहर बसा देने वाले और शहरों के कल-कारखानों को चलाने वाले ये मजदूर हमेशा इसी तरह अँधेरे में रहेंगे, ऐसा नहीं हो सकता। जरूरत है कि ऐसे सभी मजदूरों को एक क्रान्तिकारी विकल्प के झण्डे तले एकजुट किया जाये।

– राम नारायण, फरीदाबाद

अगर हम नहीं लड़ते
अगर हम लड़ते नहीं जाते
तो दुश्मन हमें खत्म कर देगा
और फिर
हमारी हड्डियों की ओर
इशारा करके कहेगा
देखो,
ये गुलामों की हड्डियाँ हैं,
गुलामों की।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 29, यू.एन.आई. अपार्टमेण्ट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा-गाजियाबाद-201010
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्यः एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवरत है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

एम.आई.डी.सी. के एम्ब्रायडरी मजदूरों का हाल
कम्पनियाँ नहीं यातना-गृह हैं मजदूरों के लिए

बिगुल संवाददाता

मशीनों की धड़-धड़ और ऐ! ऐ! ऐ! भाई के स्वर में लयबद्ध तालियों की गूँज, किसी भाड़े के कलम घसीटू के लिए सृजनात्मक कर्म हो सकता है, मगर यह मजदूरों के लिए प्रतिदिन बारह घण्टे की यंत्रणा से कम नहीं है।

कल्याण डोबिली (**महाराष्ट्र इण्डस्ट्रियल डेवलपमेण्ट कारपोरेशन एम.आई.डी.सी**) में दर्जनों एम्ब्रायडरी कम्पनियों में कढ़ाई का काम 24 घण्टे चलता रहता है। जिनमें 16 से 25 की उम्र के हजारों लड़के दिन-रात काम करते रहते हैं। स्विट्जरलैण्ड की बनी इन 'शाउरेर' मशीनों की तकनीकी कुशलता हमारे देश की लखनवी चिकनकारी की कब्र पर स्थापित हैं।

समूचे एम.आई.डी.सी में अब काम के घण्टे 12 हो गये हैं। 12-12 घण्टों की दो पालियों में काम दिन-रात चलता रहता है, और मशीनों की ताल पर मजदूर 12-12 घण्टे नाचते रहते हैं। पाली बदलने का कोई नियम नहीं है। यह महीनों-महीनों तक चलता रहता है। इसमें बदलाव की गुंजाइश तभी होती है, जब मजदूर काम रोक कर अपना विरोध दर्ज नहीं करा देते।

'शाउरेर' मशीनों पर तीन किस्म के मजदूर काम करते हैं। ऑपरेटर, जिसे 12 घण्टे के 130 रुपये मिलते हैं। फ्रंट साइडर, जिसे 12 घण्टे के 120 रुपये तथा बैक साइडर, जिसे 85 रुपये मिलते हैं। ऑपरेटर जैसा कि नाम से जाहिर है मशीन को ऑपरेट करता है। वह मशीन में कपड़े लगाने, डिजाइन का कार्ड बदलने और मशीन को सन्तुलित ढंग से चलाने का काम करता है। फ्रंट साइडर शब्दशः मशीन के अगले हिस्से में काम करता है। इसकी बहुत ही सक्रिय भूमिका होती है। क्योंकि मशीन के अगले हिस्से में सुईयाँ लगी रहती हैं। धागा छोड़ने पर इसे चलती मशीन में (जिसमें सुईयाँ लगातार आगे पीछे होती रहती हैं) धागा डालना होता है। यह काम बहुत ही सक्रिय एकाग्रता की माँग करता है। तनिक भी लापरवाही होने पर सुईयाँ उँगलियों में घुस जाती हैं। बैक साइडर लगातार आगे वाले साथियों को खीझ और गुस्से को सहते हुए बाइबिन भरता रहता है। प्लाट के अन्दर ऐ! ऐ!! ऐ!!! भाई sss और तालियों की गूँज दरअसल संकेत ध्वनियाँ हैं क्योंकि मशीनों के शोर में आगे वाला साथी पीछे वाले साथी को छूटे हुए बाइबिन के धागे को लगाने का संकेत करता है। यही बैक राइडर का काम है। इसे भी लगातार सजग और सचेत रहना पड़ता है। तनिक भी लापरवाही ऊपर-नीचे चलते शटल में बाइबिन भरते बैक साइडर के हाथ के पंजों को चोटिल कर सकती है। इस स्थिति में मजदूर लगातार 15 दिनों तक काम नहीं कर पाते। दवा-इलाज के लिए कम्पनी कोई सुविधा नहीं देती, वरन चोटिल मजदूरों को लापरवाही के जुर्म में बाहर कर दिया जाता है। शिव शक्ति एम्ब्रायडरी नाम की इस कम्पनी में करीब 30 'शाउरेर' मशीनें चलती हैं, जिसमें प्रति मशीन कम से कम 5 मजदूरों की जरूरत होती है। जिसमें दो आगे, दो पीछे तथा एक ऑपरेटर होता है।

दूसरा विभाग (खाता) मेन्डिंग का है जिसमें औसतन दिन-रात मिलाकर 70 कारीगर काम करते हैं। यह विभाग 'शाउरेर' मशीन की छूटी हुई कढ़ाई को चिकन मशीनों पर रिपेयर करता है। 100 मशीनों पर काम के आवक के अनुसार 24 घण्टे काम चलता रहता है। दिन की पाली में ज्यादातर महिला मजदूर काम करती हैं। इन्हें मजदूरी पीस रेट से मिलती है। इसलिए प्रत्यक्षतः इनके लिए समय का कोई बन्धन नहीं है। लेकिन इनके ऊपर उजरती गुलामी का दूसरा रूप 'अर्जेंट' का डण्डा हमेशा सवार रहता है।

तीसरा विभाग शेयरिंग का है जिसमें एम्ब्रायडरी किये हुए कपड़ों की फिनिशिंग रोलरनुमा मशीन से की जाती है। यहाँ भी दिखावटी स्वतंत्रता है मगर अर्जेंट के डण्डे के साथ। इस विभाग में 20 लड़के काम करते हैं। सबसे कम दिहाड़ी यानी 12 घण्टों के लिए 50 रुपये फोल्डिंग और पैकिंग के मजदूरों की है, जिसमें 20 लड़के काम करते हैं।

मजदूरों के अधिकार क्या हैं इस पर सोचना भी मजाक जैसा लगता है। काम की जो स्थिति 15 साल पहले थी, वह अब बीते जमाने की बात हो गयी है। ओवर टाइम क्या है, बोनस-महँगाई भत्ता क्या है? यह मजदूरों की नयी पीढ़ी को पता नहीं है। आज काम के घण्टे 12 हो गये हैं मजदूर काम करते हैं 12 घण्टे और मजदूरी मिलती है आठ घण्टे की। कम्पनी के अन्दर निरंकुशता की हद यह है कि काम पर उपस्थित होने के बावजूद वाचमैन के रहमों करम पर यहाँ की ज्यादातर फैक्टरियों में मजदूरों की हाजिरी-गैर हाजिरी लगती है। इन वाचमैनों को भी लूटने का हक मालिकान ने दे रखा है। बाकी बचे मैनेजर-सुपरवाइजर, जो गरियाने और कम्पनी के बाहर धक्का मारने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। कैशियर और वाचमैन मिलकर हाजिरी उड़ाने की साजिश करते रहते हैं।

मजदूरों के बीच कोई संगठन नहीं है। ज्यादातर मजदूर 'यूनियन' का मतलब अपनी बेरोजगारी समझते हैं। क्योंकि मजदूर अभी तक यूनियनबाजी का मतलब यही समझते आ रहे हैं कि यूनियन सिर्फ रुपये पैसे की, सुविधा की लड़ाई है।

अब तक ज्यादातर हड़तालों में यूनियन नेताओं ने मालिकों से दलाली खायी है। बहुत से मजदूर यह सोचने लगे हैं कि यूनियन बनाकर लड़ने का मतलब क्या महज रुपये की लड़ाई है? या मजदूरों के अधिकारों की, मजदूरों के मनुष्य होने की लड़ाई कब शुरू होगी? यह बात आजकल बहुत से मजदूर सोचने लगे हैं।

उत्तराखण्ड में फेरी वालों-किरायेदारों पर नया अंकुश
अपराध नियंत्रण तो बहाना है, जनता ही निशाना है

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। उत्तरांचल पुलिस ने राज्य के औद्योगिक जिले ऊधमसिंह नगर के रुद्रपुर में जनतांत्रिक अधिकारों पर एक और हमला बोल दिया है। वह फेरीवाले- खोमचेवाले-रिक्शा चालकों का सत्यापन और सूचीबद्ध करने के साथ ही शहर में रहने वाले किरायेदारों का भी सत्यापन करने जा रही है। यह सारी कार्रवाई आपराधिक गतिविधियों पर नियंत्रण कायम करने के बहाने की जा रही है।

पुलिस क्षेत्राधिकारी नगर के निर्देशानुसार पुलिसकर्मी शहर के मुहल्लों-कालोनियों में डोर-टू-डोर जाकर मकानों में रह रहे "संदिग्ध" किरायेदारों की फोटोग्राफी करके पूरा ब्योरा जुटायेंगे। वे आवासों पर अपने कोड नं. अंकित करेंगे। साथ ही परिवार में रह रहे लोगों की संख्या, रहने वाले किरायेदार का मूल पता, काम का ब्योरा और पूरा ब्योरा दर्ज करेंगे, जिसका सत्यापन सम्बन्धित थानों से कराया जायेगा।

उधर वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक ने पुलिस महकमे को निर्देश दिया है कि फेरी वालों पर नजर रखी जाये और दूसरे प्रदेशों से आने वालों के बारे में पूरी जानकारी ली जाये। सन्देह होने पर उनके बारे में पूरी छानबीन की जाये। साथ ही उन्होंने यह भी निर्देश दिया कि वामपंथियों के क्रियाकलाप पर नजर रखी जाये।

इस बहाने वह एक तीर से तीन निशाने साध रही है—एक तो पुलिस सक्रियता के नाम पर आम मेहनतकश गरीब जनता का पुलिसिया उत्पीड़न और ज्यादा बढ़ेगा। दूसरे स्थानीय और बाहरी के बीच नये विवाद और फसाद बढ़ेंगे क्योंकि उद्योगों के विस्तार के साथ तमाम मेहनतकश लोग काम-धंधे की तलाश में यहाँ आते रहते हैं। इसके साथ ही हक-हकूक की आवाज उठाने वालों पर अंकुश लगाने की खुली छूट महकमे को मिल जायेगी।

उत्तराखण्ड की यह पूरी तराई पट्टी एक ऐसे समुद्र की तरह है जहाँ पूरे देश के अलग-अलग इलाके के लोगों का मिलन हुआ है। यहाँ की मूल आबादी थारु, बुक्सा जनजातियों की रही है। देश के विभाजन के बाद पूर्वी और पश्चिम पाकिस्तान से यहाँ बंगाली और पंजाबी आबादी को लाकर बसाया गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश व पर्वतीय इलाके से स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बसाये गये। समय-समय पर मेहनत-मजदूरी करने के लिए उत्तर प्रदेश-बिहार व देश के अन्य हिस्सों से मेहनतकश जनता यहाँ आती रही। सबने अपनी मेहनत से इस दलदली और बेहद खतरनाक जानवरों और बीमारियों से जूझते हुए इस क्षेत्र को हरित क्रान्ति और उद्योगों का क्षेत्र बनाया। अब जब यह कमाऊ पूत बन गया तो इसे देश और दुनिया के मुनाफाखोरों का क्षेत्र बनाया जा रहा है और इनकी सुरक्षा के लिए मेहनतकश गरीब जनता और जनवादी संगठनों पर अंकुश लगाने की तैयारी की जा रही है।

पुलिस महकमे का यह नया दिशा निर्देश जनतांत्रिक अधिकारों पर कुठाराघात है। यह शासनतंत्र की निरंकुशता की एक और आहट है। वैसे भी, उदारीकरण के इस दौर में, देश के अलग-अलग हिस्सों में भी आम जनविरोधी ऐसे कृत्य और चौतरफा अंकुश लगाने की कार्रवाईयाँ जारी हैं। यह आपातकाल के नये दौर की दस्तक है।

जनता पर इस नये हमले का प्रतिरोध जरूरी है। इंसाफपसन्द नागरिकों को इसकी मुखालफत के लिए आगे आना ही होगा।

> बैरिकेडों और लड़ाई के मैदानों में अपनी विजय हासिल करने से पहले सर्वहारा वर्ग सिलसिलेवार बौद्धिक विजयों के जरिये अपने आसन्न शासन की सूचना देता है।
>
> —मार्क्स

विशेष आर्थिक क्षेत्र के लिए कानून जल्दी बनेगा
पूँजीपतियों की बल्ले-बल्ले

(कार्यालय संवाददाता)

एक तरफ तो सरकार विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए शीघ्र ही कानूनों की घोषणा करने वाली है। इससे सम्बन्धित विधेयक चार माह पूर्व ही पास हो चुका है। दूसरी तरफ वह संसद के शीतकालीन सत्र में नये कम्पनी कानून के लिए विधेयक लाने की तैयारी कर रही है। उधर अपेरल एक्सपोर्ट प्रमोशन काउंसिल (ए.ई.पी.सी.) ने मालिकपक्षीय श्रम कानून बनाने की सिफारिश की है। जबकि ई.पी.एफ. ब्याज दरों में कटौती के लिए सरकार कृतसंकल्प है। कुल मिलाकर देशी व बहुराष्ट्रीय लुटेरी कम्पनियों के खुली लूट के रास्ते के बचे अवरोधों को भी हटाने के लिए केन्द्र की संप्रग सरकार जुटी हुई है। और सरकार के सहयोगी संसदीय वामपंथी सरकार से दूसरे-तीसरे मुद्दों पर उलझकर अपने विरोध की नौटंकी जारी रखे हुए हैं।

जैसी कि देशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनी की माँग थी, केन्द्र सरकार विशेष आर्थिक क्षेत्रों के लिए नियम-कानूनों की घोषणा जल्द ही करने वाली है। चार माह पूर्व पारित विधेयक ही कानून का रूप लेंगे। विशेष आर्थिक क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र होगा जहाँ लम्बे संघर्षों के दौरान प्राप्त सीमित श्रम कानून भी लागू नहीं होंगे। सब कुछ मालिकों की मनमर्जी पर चलेगा। ट्रेड यूनियन अमान्य होंगी, मजदूर रखने व निकालने की मालिकों को खुली छूट होगी, मजदूरों को बंधुआ के तरीके से रखने की आजादी होगी, चारों तरफ से बाड़ेबन्दी किये हुए इस क्षेत्र में बंदूकधारी सुरक्षा कर्मियों की निगरानी रहेगी, आदि, आदि।

केन्द्रीय वाणिज्य व उद्योग मंत्री कमलनाथ ने पिछले दिनों बताया कि देश में 65 विशेष आर्थिक क्षेत्रों को हरी झण्डी दिखाई जा चुकी है। इनमें कई पर अलग-अलग स्तर पर काम हो रहा है और कई शुरूआत से पहले नोटिफिकेशन जारी होने का इंतजार कर रहे हैं। राज्य सरकारें भी इस होड़ में बाजी मारने और पूँजीपतियों की लायक सेवक बनने का प्रयास कर रही हैं। पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार भी विशेष आर्थिक क्षेत्र बना रही है।

जबकि उत्तरांचल सरकार ने नवनिर्मित औद्योगिक इलाकों (सिडिकुल क्षेत्रों) ऊधमसिंह नगर के रुद्रपुर व सितारगंज तथा हरिद्वार जिले में ऐसे ही विशेष आर्थिक क्षेत्रों की घोषणा के बाद निर्माण कार्य भी तेज करवा दिया है।

इधर सरकार 1956 के कम्पनी कानून में बदलाव के लिए एक विधेयक संसद के शीतकालीन सत्र में पेश करने की तैयारी में हैं। कम्पनी मामलों के मंत्री प्रेमचन्द गुप्त के अनुसार कम्पनी कानून को बदलते वक्त के साथ प्रासंगिक बनाना जरूरी है (यानी वैश्विक लुटेरों के लिए सरलीकृत कानून!)। उनके अनुसार प्रतिस्पर्धा और वैश्वीकरण के इस दौर में कम्पनी कानून की ओवरहालिंग की जानी चाहिए।

इस सन्दर्भ में सरकार ने पहले पहल कांसेप्ट पेपर (धारणा पत्र) जारी किया था जिसमें पूँजीपतियों की संस्थाएँ और वित्तीय संस्थाएँ आदि शामिल थीं। इनकी राय आने के बाद जे.जे. ईरानी की अध्यक्षता में विशेषज्ञ पैनल भी गठित कर दिया गया है जो नये कानून का मसौदा तैयार करने की प्रक्रिया में अपनी सिफारिश देगा।

कुल मिलाकर कांग्रेस नेतृत्व वाली (और संसदीय वामपंथियों द्वारा समर्थित) संप्रग सरकार बड़ी ही कुशलतापूर्वक उदारीकरण के मजदूर विरोधी एजेण्डे पर आगे बढ़ रही है।

रजाइयों का निर्यात और बिखरी शोषित कामगार महिलाएँ

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)। "इल्मो-हिकमत, दीनो-ईमां, मुल्को-दौलत, बोलिये, बाजार से ला देता हूँ मैं।" शमशेर बहादुर सिंह की ये पंक्तियाँ मौजूदा सामाजिक-संरचना पर कितनी मौजूं हैं। बाजार की दुनिया कितनी मायावी है, कितने रंगों और चमक-दमक से लबरेज है। बाजार में वह सब जो कलात्मक है, सुन्दर है, नायाब है–के खरीदार मौजूद हैं। वह चाहे कसीदाकारी का काम हो, बेलबूटे से सजाए हुए सामान हों अथवा ऐसी दूसरी बहुत सी चीजें, जिनकी फेहरिस्त लम्बी है, हमारी आँखों के सामने आती हैं। अगर आप रोकड़े वाले हैं तब तो यह आप के लिए है अन्यथा मन मसोसकर गुजर जाइये–है न बाजार की अदभुत दुनिया।

इस चकाचौंध और अदभुत दुनिया के पीछे भी एक दुनिया है–नीम अंधेरे की, पसीने, मिट्टी और मेहनत की दुनिया। यहाँ कल की रोटी के लिए हाड़तोड़ काम है। दुधमुंहे बच्चों वाली औरतों से लेकर मौत की दहलीज़ पर ठिठकी मांओं तक के अनवरत संघर्ष की जिन्दगी है। जो पर्दे के पीछे रहकर कलात्मक कसीदाकारी में खटती हैं। लेकिन इनकी मेहनत का फल अदृश्य शक्तियों द्वारा लपक लिया जाता है। कौन है इनके इल्म का खरीदार और कैसे? आइये भूमण्डलीकरण के दौर में लूट के बदले हुए स्वरूप से परिचित होने के लिए एक उदाहरण पर गौर करें :

उत्तरांचल प्रदेश में औद्योगिक नगरी के तौर पर विकसित हो रहा जिला ऊधमसिंह नगर। इस जिले में करीब 25 हजार महिलाएँ एक विशेष किस्म की रजाइयों को तैयार करती हैं। ये रजाइयाँ दुनिया के तमाम देशों के अमीर घरों में अपनी कलात्मकता की आभा बिखेरती हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, डेनमार्क, हॉलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, आदि देशों में मुख्यतः इनकी खपत है।

इन 'एक्सपोर्ट क्वालिटी' वाली रजाइयों की मुख्य सिफत इन पर किया गया काम होता है। यहाँ पर महिलाएँ बेहद मामूली भुगतान पर इन पर उभरी हुई आकृतियों के अनुरूप उनमें धागा पिरोने का काम करती हैं। महिलाएँ अपनी कारीगरी और मशक्कत के बल पर बहुत दूर बैठे मालिकान को तो और मालामाल करती हैं और उनकी खुद की ज़िन्दगी में तंगी और बेबसी बरकरार रहती है। यह रिपोर्ट इसी अंधेरे और उजाले के जुदा सवालों को चिह्नित करती है।

मालूम हो कि इन रजाइयों की मुख्य कम्पनियाँ तो नोएडा, गाजियाबाद, दिल्ली, गुड़गाँव आदि शहरों में स्थापित हैं। इनके मालिकानों का विदेशी बाजारों में सम्बन्ध है। वहाँ की डिजाइनों की माँग के अनुसार यहाँ भारत के विभिन्न इलाकों में रजाइयों में धागा डालने और फर्दों पर छापा लगाने का काम होता है। ऊधमसिंह नगर का जिला मुख्यालय रुद्रपुर ऐसा ही एक बड़ा सेण्टर है।

यह काम यहाँ की बस्तियों में इतना बिखरा होता है कि इसे अगर कुटीर उद्योग की संज्ञा दी जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। दिल्ली, नोएडा, आदि शहरों की विशालकाय कम्पनियों से अनुबन्ध प्राप्त करके स्थानीय स्तर पर ठेकेदार फर्म स्थापित करके काम कराते हैं। इन कामों में ज्यादातर महिलाएँ लगी हुई हैं और श्रम कानून का यहाँ कहीं अनुपालन नहीं होता है।

इन फर्मों से भी कामों का बँटवारा तीन रूपों में होता है–एक तो यहाँ कुछ रजाई सेण्टर खुले हुए हैं जहाँ महिलाएँ एकत्रित होकर काम करती हैं, इन्हें भुगतान मासिक तनख्वाह के तौर पर दिया जाता है। दूसरा–लोग पीस रेट पर काम करने के लिए सेण्टर से रजाइयाँ ले जाते हैं और धागा पिरोने का काम घरों में करते हैं। पीस रेट पर ही ठेकेदार के मातहत भी लोग काम करते हैं। ज्यादातर आबादी ठेके पर ही काम करती है और सबसे अधिक शोषण का शिकार होती है। रजाई में धागा डालने से पूर्व कपड़ों पर तय मानक के अनुरूप डिजाइन छापने का काम होता है। जिसे भी मामूली दिहाड़ी पर कराया जाता है। और धागा डालने के बाद तैयार माल वापस दिल्ली, नोएडा चला जाता है। जहाँ मज़दूरों की एक अन्य आबादी गोटा या किनारी लगाने का काम करती है। इस प्रकार विविध स्तरों पर ठेकेदारों के हाथों से गुजरती हुई रजाइयाँ विदेश चली जाती हैं।

रजाइयों में अपनी कला के बल पर जान फूँकने वाली महिलाओं को महज 100-200 रुपये मिलते हैं जबकि एक रजाई तैयार करने में दो से चार दिन तक लग जाते हैं। यानी 12-14 घण्टे के इस श्रमसाध्य काम के बदले औसतन 50-60 रुपये की दिहाड़ी बनती है। इनमें ज्यादातर घरेलू महिलाएँ ही काम करती हैं। जो अपना ज्यादातर समय रजाई सिलने में ही लगाती हैं। डोरा डालने का काम डिजाइन के अनुसार ही करना पड़ता है। अगर रजाइयों में डोरा कहीं गलत तरीके से पड़ गया तो उसका दण्ड महिला कारीगरों को ही भुगतना पड़ता है। इन रजाइयों के निर्माण में अधिकतम डेढ़ हजार तक लागत आती है, जबकि विदेशों में इनकी कीमत चार हजार से लेकर पन्द्रह हजार रुपये तक है। एक अनुमान के मुताबिक जिले में प्रतिवर्ष ढाई लाख रजाइयाँ बनाई जाती हैं।

यहाँ काम करने वाली महिला कारीगरों की मेहनत के बल पर बहुत दूर बैठा मालिकान विदेशों से अकूत मुनाफा लूटता है और इन्हें मिलती है तमाम बीमारियों की सौगात। आँखे गड़ाकर घण्टों काम करने के चलते आँखों में कमजोरी आने लगती है, रुई की गर्द साँस के सहारे फेफड़ों को नुकसान पहुँचाती है और एक ही स्थिति में घण्टों बैठकर काम करने के चलते महिलाएँ कमर और रीढ़ की बीमारियों का शिकार हो जाती हैं।

यूँ तो एक ही काम में लगी किन्तु बिखरी हुई लगभग पच्चीस हजार की यह आबादी चुपचाप जुल्म और शोषण सहती रहती है, लेकिन अपवादस्वरूप यहाँ कुछ संघर्ष भी हुए हैं। सेण्टर पर समूह के रूप में काम करने वाली महिलाओं ने अपनी आवाज भी बुलन्द की और उन्हें कुछ सहूलियतें भी मिलीं। लेकिन साजिश के तहत सेण्टर का काम धीरे-धीरे कम कर दिया गया और ठेका प्रथा का जोर बढ़ गया। इसके बाद जिले के दिनेशपुर की महिला श्रमिकों ने अपनी संगठित आवाज बुलन्द की, लेकिन एक अर्से तक चलने के बाद संघर्ष बिखर गया।

बहरहाल इतनी तकलीफदेह परिस्थितियों से तैयार रजाइयों के बनाने वाले नहीं जानते कि हमारा मालिक कौन है? और बाजार की धुंध में हमारी आँखें यह देख पाने में असमर्थ होती हैं कि जो सामान हमारे सामने खूबसूरती बिखेर रहा है उसका सर्जक किन हालातों में जिन्दगी जीता है। यही है मुनाफे और बाजार की दुनिया जो बेरहमी से लोगों की क्षमता को सिक्कों की खनक के नीचे दबा देती है और पूँजीवादी व्यवस्था-भूमण्डलीकरण के दौर में कामों का निर्धारण कितने बदले हुए रूप में कर रही है यह उसका एक उदाहरण है।

–आशीष कुमार

विदेशी निवेश के सब्जबाग की असलियत

विदेशी कंपनियों में मजदूरों को लूटने-निचोड़ने की खुली छूट

(कार्यालय संवाददाता)

शुरुआत में निजीकरण के बारे में बड़े-बड़े दावे किए गये थे लेकिन मुंगेरीलाल के हसीन सपनों की तरह अधबीच में ही निजीकरण के बारे में किए गये वादे बिजली, पानी, परिवहन आदि क्षेत्रों में टूटना शुरू हो चुके हैं। उसी तरीके से अब विदेशी निवेश के बारे में फिर से जनता को भरमाने की कोशिशें हो रही हैं। सच्चाई यह है कि विदेशी निवेश वाली कम्पनियाँ कुछ लोगों को रोजगार तो दे रही हैं लेकिन कुल मिलाकर इनमें मजदूर अधिकारों को दबाया जाता है। इन कम्पनियों की चमक-दमक के पीछे मजदूरों को ज्यादा से ज्यादा निचोड़ लेने की साजिशें रची जाती हैं।

पिछले दिनों हमारे देश के युवा सांसदों का एक प्रतिनिधिमण्डल मिलिन्द देवड़ा के नेतृत्व में सिंगापुर के निवेशकों से मिलने गया था। वहाँ बातचीत के दौरान सिंगापुरी प्रधानमंत्री ने साफ-साफ कहा कि भारत में श्रम आयुक्त एक समस्या हैं। और कि पड़ोसी चीन कम्युनिस्ट देश(?) होने के बावजूद निवेश के लिए ठीक है, परन्तु भारत में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। स्पष्ट था कि उनका इशारा भारत में अभी बचे-खुचे श्रम कानूनों की तरफ था। उन्हें इन गिने-चुने अधिकारों के कारण भी समस्या हो रही है। लेकिन भारत का शासक वर्ग अपनी तरक्की का रास्ता समझ गया है। प्रतिनिधिमण्डल ने तुरन्त इसे ठीक किए जाने का आश्वासन दिया।

ये तो महज एक बानगी है कि किस प्रकार हमारे देश का शासक वर्ग मजदूर अधिकारों की कीमत पर अपनी तरक्की का रास्ता तैयार कर रहा है। इस तरह के उदाहरण ढेरों मिल सकते हैं। हाल में कई राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने इसी तरह की कवायदें कीं। बुद्धदेव ने तो बेशर्म होकर मजदूरों को ही मालिकों के उत्पादन को बढ़ाते रहने की सलाह दे डाली। कुछ इसी तरह की सीख आजकल मजदूरों को लगभग सभी नेता दे रहे हैं।

लेकिन क्या इन विदेशी निवेश वाली कम्पनियों द्वारा किया जा रहा भयंकर शोषण कोई छुपी बात है? बिल्कुल नहीं। अब धीरे-धीरे पता लग रहा है कि इन कम्पनियों को शोषण-उत्पीड़न में विशेषज्ञता हासिल है। चाहे गुड़गाँव में होण्डा के मालिकों द्वारा करवाया गया दमन हो या कहलगाँव में मालिकों के इशारों पर मजदूरों की पिटाई या फिर रुद्रपुर में चल रहे संघर्ष का उत्पीड़न का मामला हो। लगभग सब जगह मजदूरों की आवाज को बलपूर्वक दबाया जा रहा है। उनकी जायज माँगों के बदले में उन्हें लाठियाँ मिल रही हैं। यूनियन बनाने, धरना-प्रदर्शन करने, माँगें रखने जैसे सामान्य अधिकारों के प्रति भी ये कम्पनियाँ सख्त रवैया अपनाती हैं।

इस दमन-उत्पीड़न में विदेशी निवेशकों को खुश करने में भारतीय शासक वर्ग कोई कोर-कसर नहीं छोड़ना चाहता है। पुलिस, प्रशासन से लेकर जहाँ तक संभव है मालिकों की इच्छा का काफी ख्याल रखा जाता है। गौरतलब है कि गुड़गाँव की घटना होने से पहले वहाँ के मुख्यमंत्री हुड्डा ने इस मामले में मजदूरों को झुकने की सलाह दी थी। इसी प्रकार विशेष आर्थिक जोनों का निर्माण किया जा रहा है जहाँ यूनियन बनाने, धरना-प्रदर्शन आदि गतिविधियों पर कानूनन रोक रहेगी। साफ है कि इस वर्ग के हित विदेशी मालिकों से नाभिनालबद्ध जुड़े हुए हैं क्योंकि लूट के इस खेल में दोनों शामिल हैं।

लोगों में भी इन कम्पनियों के बारे में भ्रम का पर्दा धीरे-धीरे उठ रहा है। इनकी भव्य इमारतों, साफ-सुथरे परिसरों के पीछे छुपी मानवद्रोही मंशा साफ होती जा रही है। साथ ही ये कम्पनियाँ भी अब और नंगे रूप में सामने आ रही हैं। इन कम्पनियों में शोषण का पैमाना बढ़ाया जा रहा है। ठेके पर कम वेतन वाले अस्थायी लोगों से काम करवाना, मनमर्जी से छँटनी करने जैसे हथकण्डे खूब अपनाए जा रहे हैं।

मजदूरों को लूटने वाली इस प्रकार की कम्पनियों और उनके मालिकों और भारत के शासकों के इस साझे षडयन्त्र को समझना और व्यापक आम जनता को इसके दुष्परिणामों से अवगत कराना जरूरी है। भविष्य में इस शोषण-उत्पीड़न के नीचे दबी व्यापक आबादी का गोलबन्द होना लाजिमी है। और तब इस साझे षडयन्त्र के साझीदारों के विरुद्ध ही महासमर लड़ा जाएगा। क्या हम इस महासमर की तैयारियां कर रहे हैं?

युद्ध की विनाशलीला के बीच पूँजी के गिद्धों की लूटखसोट

युद्ध की विनाशलीला और इन्सानियत के हाहाकार के बीच पूँजी के गिद्ध इन दिनों इराक में जबर्दस्त लूटखसोट में लगे हैं। अमेरिकी कम्पनी हेलीबर्टन के लिए भी इराक युद्ध वैसा ही वरदान साबित हुआ है, जैसा अन्य साम्राज्यवादी कम्पनियों के लिए।

हेलीबर्टन कम्पनी की केबीआर डिवीजन ने इस वर्ष की तिमाही में अपने लाभ में 284 फीसदी की बढ़ोत्तरी की। केबीआर डिवीजन अमेरिकी रक्षा मन्त्रालय के ठेके लेती है।

हेलीबर्टन वही कम्पनी है, जिसका कर्ता-धर्ता उपराष्ट्रपति बनने से पहले डिक चेनी हुआ करता था। अमेरिकी रक्षा मन्त्रालय पेण्टागन ने तमाम घपले घोटालों के बावजूद हेलीबर्टन कम्पनी को मध्य एशिया में "अच्छे काम" के लिए पुरस्कृत किया है। उसे 7 करोड़ डॉलर पुरस्कार राशि के रूप में दिये गये और समय-समय पर विशेष सहूलियतें दी गई। यह सब ऑडिट एजेन्सी की प्रतिकूल टिप्पणियों को अनदेखा करते हुए हुआ।

ऑडिट एजेन्सी ने केबीआर डिवीजन के 10 करोड़ डॉलर के खर्च पर सवालिया निशान लगाया और कहा कि इसको खर्च करने के पर्याप्त कारण नहीं हैं। इसके साथ ही ऑडिटर ने करीब साढ़े चार करोड़ डॉलर राशि के खर्च में यह पाया कि इस खर्च की न तो कोई रसीदें हैं और न ही जरूरी स्पष्टीकरण कि इस भारी-भरकम रकम का इस्तेमाल किस रूप में हुआ।

ये तथ्य यह साफ कर देते हैं कि किस धोखाधड़ी और अन्धेरगर्दी के साथ तमाम अमेरिकी कम्पनियाँ इराक युद्ध के दौरान और आज भी लूट-खसोट में लगी हैं। इनका साइनबोर्ड जितना चमकदार और साफसुथरा है, इनके कारनामे उतने ही गन्दे और घिनौने हैं।

इसी सम्बन्ध में अमेरिकी न्यायपालिका ने एक फैसला दिया जो पूँजीवादी न्यायपालिका के असली चरित्र के अनुरूप ही है। फैसले में कहा गया कि यदि किसी कम्पनी को किन्हीं सेवाओं के लिए इराकी मुद्रा में भुगतान किया जाता है और उस कम्पनी का दावा (क्लेम) झूठा भी है तो भी उस पर मुकदमा नहीं ठोंका जा सकता। यानी दूसरे देश में छुट्टा साँड़ की तरह मनमर्जी की खुली छूट।

यह है युद्ध की विभीषिका के बीच अट्टहास करते पूँजी के राक्षस का चेहरा।

"बुर्जुआ अखबार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मजदूरों के अखबार खुद मजदूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

मजदूरों का अपना अखबार है। यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपनों के लिए बिगुल कार्यालय को लिखिए।

संचार माध्यमों द्वारा सूचना का 'ब्लैक आउट' और तर्कहीनता की प्रस्तुति–भूमण्डलीकरण की देन

बाजार! हाँ पूँजीवादी समाज में सब कुछ बाजार और मुनाफे के लिए ही होता है। माल अंधभक्ति (कमोडिटी फेटेसिज्म) पूँजीवादी दुनिया में कोई नयी चीज नहीं है। लेकिन वैश्वीकरण-उदारीकरण के इस दौर में इसका जिस स्तर पर सार्वभौमिकीकरण और जितना व्यापकीकरण हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ था। और इसी के साथ अंधी, गलाकाटू मानवद्रोही, संवेदनहीन प्रतियोगिता भी बढ़ी है–चाहे पेप्सी और कोक हों अथवा विभिन्न टीवी चैनल।

परन्तु इनमें भी आम जनता पर सबसे घटिया और मारक हमला टीवी चैनलों की आपसी होड़ से हो रहा है। क्योंकि जनता से इनका सीधा जुड़ाव होता है। पूँजीवादी मीडिया से आम जनता की ज़िन्दगी और हक़ीकत का बयान और खबरें पाना वैसे भी मुश्किल रहता है। लेकिन संचार क्रान्ति के इस दौर में झूठ-फ्राड-कूपमण्डूकता-अंधविश्वास-अतार्किकता-संवेदनहीनता का पूरा घटाटोप छाया हुआ है। एक तरफ तो यह बाजार की गलाकाटू प्रतियोगिता का परिणाम है तो दूसरी तरफ यह आम जनता के लिए सूचनाओं का "टोटल ब्लैक आउट" और विद्रूपीकरण का नमूना है। ये मानव समाज में "बौद्धिक एड्स" फैलाने का काम कर रहे हैं। आइए कुछ बानगियों पर गौर करें–

देश के पूर्व राष्ट्रपति के.आर. नारायणन के निधन से चार-पाँच घण्टे पूर्व स्टार न्यूज ब्रेकिंग न्यूज में उनके निधन की खबर परोस देता है। फिर क्या जी न्यूज, सीएनबीसी, आज तक, इण्डिया टीवी आदि ढेरों चैनल इस होड़ में शामिल हो गये। कोई उनकी जीवनी देने लगा, तो कोई पूर्व प्रधानमंत्री गुजराल की श्रद्धाँजलि देने लगा तो कोई कुछ और। किसी ने सत्यता को जाँचने की न तो कोशिश की और न ही बाद में सच उजागर होने पर गलत खबर देने के लिए माफी ही माँगी।

यह तो थी झूठ की एक बानगी। आपसी होड़ का आलम यह है कि यदि एक समाचार चैनल पुनर्जन्म की एक निहायत अवैज्ञानिक और अंधविश्वास को बढ़ाने और फैलाने वाली खबर लगभग दो घण्टे दिखाता है तो दूसरा प्रतिद्वन्द्वी चैनल तीन घण्टे तक इसका महिमामण्डन कर रहा होता है। एक चैनल रहस्यमय मॉदिर दिखा रहा है तो कोई अन्य काल-कपाल-महाकाल बेच रहा है। आलम यह है कि पिछले दिनों मध्यप्रदेश के एक व्यक्ति द्वारा निश्चित तिथि और समय पर मृत्यु की घोषणा को दिखाने की होड़ में तमाम चैनल कूद पड़े थे।

पचहत्तर वर्षीय एक ज्योतिषी ने निश्चित तिथि और समय पर अपनी मृत्यु की घोषणा की तो इस पाखण्डपूर्ण घटना की लाइव टेलीकास्ट (सीधा प्रसारण) से लेकर विश्वास-अंधविश्वास आदि पर चर्चा-परिचर्चा पूरे दिन प्रसारित होती रही। मृत्यु का घोषित समय बीत जाने के बाद भी उसके जीवित रहने का श्रेय उसकी पत्नी के करवाचौथ व्रत और लोगों की पूजा-अर्चना को दिया गया। कुछ चैनलों ने यही स्थापित करने का प्रयास किया कि कुण्डली देखकर ऐसी भविष्यवाणी की जा सकती है। और पूरे दिन भर की माथापच्ची के बाद तर्क पर श्रद्धा को भारी साबित कर दिया गया।

मामला चाहे इस तथाकथित मौत का हो अथवा पीड़ित युवती गुड़िया, इमराना के विरुद्ध जारी फतवे पर मची हाय-तौबा या फिर खाकपति से करोड़पति बनवाने का धंधा– अमानवीयता, संवेदनहीनता, कूपमण्डूकता का ही खुला खेल फर्रुक्खाबादी चौतरफा व्याप्त है। खबरिया चैनलों के पर्दे पर हमेशा सनसनी और उत्तेजना तैरती रहती है। सामान्य घटनाओं को बेहद बढ़ा-चढ़ा कर पेश करना, बेहद निजी ज़िन्दगी को निहायत ही असंवेदनशील, भोंडे और अश्लीलता की हद तक जाकर प्रस्तुत करना, अपराध की घटनाओं को खूब उत्तेजक और सनसनीखेज रूप से प्रस्तुत करना और पुनर्जन्म की कहानी परोसकर अवैज्ञानिकता का धुंध खड़ा करने में ये चैनल एक दूसरे से बाजी मारने और टी.आर.पी. रेटिंग में आगे बढ़ने की होड़ में जम कर लगे हुए हैं। क्योंकि विज्ञापनदाताओं के लिए एक मात्र पैमाना टी.आर.पी. रेटिंग ही होता है। यह किसी चैनल का बाजार भाव होता है। यही नहीं, चुनावों के दौर में (जैसे वर्तमान बिहार राज्य चुनाव में) ये चैनल एक्जिट पोल, ओपिनियन पोल के धंधे में लिप्त हो जाते हैं। एक ने एक पोल दिखा दिया तो अन्य उसमें दस-पन्द्रह फीसदी ऊपर-नीचे कर अपना पोल दिखा देते हैं। यह एक ऐसा फ्राड का धंधा है जिसमें कोई चैनल अपनी विश्वसनीयता साबित ही नहीं कर सकता। और चुनाव परिणाम तो इसे कई बार गलत साबित कर चुके हैं। लेकिन बाजार की होड़ में सब कुछ जायज है।

रही बात प्रिन्ट मीडिया की, तो वहाँ भी स्थिति ऐसी ही बदतर है। अखबारों की स्थिति यह है कि ज्यादातर में समाचार कम विज्ञापन ज्यादा नज़र आते हैं। जो खबरें छपती भी हैं उनमें सनसनीखेज मसालेदार खबरों की भरमार होती है। इनमें भी खबरें ऐसी कि एक शहर के संस्करण में बगल के शहर या गाँव की महत्वपूर्ण खबरें तक गायब रहेंगी। छपने वाली खबरों में आम लोगों के सुख-दुख और उनकी ज़िन्दगी से कोई सरोकार नहीं होता। और हिन्दी अखबारों की भाषा तो माशाअल्ला है। भाषा की शालीनता की जगह फूहड़ता का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। स्थिति यहाँ तक है कि एक राष्ट्रीय अखबार ने अपने हिन्दी अखबार का माथा (मास्ट हेड) ही अंग्रेजी में कर लिया है। अंग्रेजी अखबारों में 'सोशलाइट' लोगों की रंगीनियाँ छापने के लिए 'पेज-थ्री' जैसे मसाले की राह के राही हिन्दी अखबार भी बनने लगे हैं। नंग-धड़ंग-अश्लील फोटो छापना तो इन सबकी फितरत बन चुकी है। कला-साहित्य-संस्कृति से क्रमशः दूर हटते हुए प्रिन्ट मीडिया बालीवुड से जुड़ी खबरों में डूबता जा रहा है।

चाहे अखबार हो या टीवी चैनल, बाज़ार की अंधी होड़ में जो कुछ कर रहे हैं सो बात तो है ही। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि जनतन्त्र और लोकतन्त्र की दुहाई देने वाले समाचार माध्यम जनता को वास्तविक समाचार से काटने और झूठ का धूम्रावरण खड़ा करने का काम सचेतन तौर पर कर रहे हैं। पूँजीवादी लूट-पाट से आम जनता की तबाही-बर्बादी, मुट्ठी भर अमीरजादों की विलासिता के टापू के बरअक्स कुपोषण और भुखमरी की शिकार आम मेहनतकश जनता, बेरोजगारी से तंगहाल नौजवानों की आत्महत्याएँ और हक-हकूक के लिए संघर्षरत मजदूरों-शिक्षकों-नौजवानों पर सत्ता के निर्मम दमन की खबरें अपवादों के अलावा सिरे से गायब मिलेंगी।

यह सब कुछ बेहद सोची-समझी रणनीति के तहत होता है। यह यूँ ही नहीं है कि पूरी दुनिया की खबरों पर मुख्यतः पाँच वैश्विक न्यूज एजेंसियों का कब्जा है। और वे ही यह तय करती हैं कि दुनिया की कौन सी खबर कब और कितनी प्रसारित करनी है। देश में भी प्रमुख दो न्यूज एजेंसियों का एकाधिकार है। हालाँकि सारे चैनलों और अखबारों के अपने न्यूज रिपोर्टर भी होते हैं। लेकिन टीवी चैनल हों अथवा समाचार पत्र–हैं तो आखिर मुनाफाखोर पूँजीपतियों के ही। फिर इनसे मानवीय या जनपक्षधर होने की आशा भी भला कैसे की जा सकती है!

यही कारण है कि वे उन्हीं तथ्यों को जनता तक पहुँचाते हैं जो कि उनके आका पूँजीपतियों के पक्ष में जाते हैं, और सच्चाइयों को उसी चश्मे से दिखाते हैं जो मुनाफाखोरों के हित में होती हैं।

वास्तव में, आज निर्बाध बाजारीकरण, निजीकरण, उदारीकरण की जो बयार पूरी दुनिया में बह रही है और विश्वस्तर की इजारेदारी ने जिस कदर पूरी दुनिया को एक भूमण्डलीय गाँव में बदल दिया है, उसी के अनुरूप आम जनता की सोच, संस्कृति और जीवन शैली को ढालने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों और भारत जैसे देशों के पूँजीवादी शासकों ने मिलकर साम्राज्यवादी-पूँजीवादी साँस्कृतिक परिवेश के निर्माण के साथ ही एक भूमण्डलीय सूचना-तंत्र का भी निर्माण किया है।

तभी तो बाजार की अंधी दौड़ के बावजूद इनका 'एजेण्डा फिक्स' रहता है और अवैज्ञानिक संस्कृति के निर्माण के साथ ही वे आम जनता के लिए सूचना/समाचार के 'टोटल ब्लैक आउट' की नीति पर कायम रहते हैं।

–एम. रंजन

> हिटलर और मुसोलिनी जैसे भयानक और घृणित डिक्टेटरों को इतिहास कभी नहीं भूलेगा। और वह निकृष्ट राक्षस–पूँजीवादी पत्रकारिता। पत्रकार के लिए कैसी अजीब स्थिति है–या तो वह पैसे के लिए झूठ बोले, या नौकरी से हाथ धोये। अगर वह हृदय से ईमानदार है तो झूठ बोलने से इनकार कर देगा, पर अधिकांश दबाव में आ जाते हैं। वहाँ अपने नाम को कलंक से बचाये रखना आसान नहीं। और यह कितनी भयानक जिन्दगी है। जब पत्रकार झूठ बोलते हैं तो वे जान-बूझ कर झूठ बोलते हैं। वे हमेशा जानते हैं कि सच क्या है, फिर भी धोखा देते हैं। यह वैश्यावृत्ति है। फासिस्ट भलीभाँति जानते हैं कि अच्छाई क्या है और कहाँ है। पर वे सारी अच्छाई का नाश केवल इसलिए कर देना चाहते हैं कि वे उससे घृणा करते हैं। और श्रमिकों के समूह के समूह उनकी पत्रिकाओं को पढ़ते हैं, और उनमें से बहुत से उनकी बातों को सच मान लेते हैं। सबसे बुरी बात तो यह है।
>
> **– निकोलाई आस्त्रोवस्की द्वारा लिखित 'जीवन की ओर' से**

बाजार अर्थव्यवस्था का मकड़जाल कर्ज का फन्दा अब घरों तक

एक मित्र से मिलने उनके नये आवास पर गया। बड़े मन से मकान बनवाया था। लेकिन यह क्या! नये मकान में वे मिले बड़े बुझे मन से। पूछा तो बताया कर्ज में डूब गया हूँ। पूरी तनख्वाह तो बैंक की किस्त चुकाने में चली जा रही है। किरायेदार रखा है तो घर का खर्च चल रहा है।

मैंने कहा चलिये मकान वाले तो हो गये किरायेदारी के झंझट से मुक्ति मिली। बोले अब सोचता हूँ किराये की छोटी कोठरी में ज्यादा सुकून था। आठ घण्टे ड्यूटी के बाद निश्चिन्त होकर घर आता था। कुछ समय सामाजिक कामों के लिए भी निकल जाता था।...

फैक्ट्री की हालत बेहद नाजुक थी। छँटनी के आसार साफ नजर आ रहे थे। लेकिन संघर्ष के नाम पर सन्नाटा था, क्योंकि किसी ने हाउसिंग लोन ले रखा था, तो किसी पर कन्ज्यूमर लोन या वाहन लोन का बोझ था, और ज्यादातर की चिन्ता थी कि यदि हड़ताल या तालाबन्दी हुई तो बैंक या बीमा की किस्त कैसे चुकायी जायेगी? और किस्त नहीं चुकी तो ब्याज और बढ़ जायेगा।

बाजार अर्थव्यवस्था के इस दौर में जहाँ बाजार तरह-तरह के सामानों से पटता जा रहा है वहीं कर्जदाता सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंक और उनके एजेण्ट खड़े मिल जायेंगे। यह पुराना दौर नहीं है जब कर्ज के लिए माथापच्ची करनी पड़ती थी। अब तो आलम यह है कि बाजार और मुनाफे की शक्तियाँ आपके लिए कृत्रिम आवश्यकता पैदा कर देंगी और आप किस्तों में भुगतान देने के आधार पर सामान लेकर घर आ जाएँगे और कर्ज का एक और बोझ आपकी पीठ पर लद जाएगा।

एक रिपोर्ट के अनुसार बढ़ते कर्ज की स्थिति यह है कि भारत में बैंकों के कुल कर्ज में व्यक्तिगत कर्ज की हिस्सेदारी तेजी से बढ़ रही है। इनमें आवासीय कर्ज लेने वालों की तादाद सबसे अधिक है। इसके बाद वाहन का नम्बर है, फिर अन्य उपभोक्ता सामानों का।

पूँजीपतियों की एक प्रमुख संस्था एसोचेम द्वारा हाल में कर्ज के विषय में व्यापक अध्ययन कराया गया। इस अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार 1997-98 के दौरान देश के बैंकों ने कुल 9700 करोड़ रुपये का आवासीय कर्ज दिया था जो 2003-04 के दौरान बढ़कर 85700 करोड़ रुपये तक जा पहुंचा। इसी प्रकार 1997-98 में बैंकों ने निजी वाहन खरीद के लिए 23800 करोड़ रुपये का कर्ज दिया था जो 2003-04 में बढ़कर 89800 करोड़ रुपये तक पहुँच गया। रिपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत कर्ज की यही रफ्तार कायम रही तो बैंकों के कुल कर्ज में व्यक्तिगत कर्ज की हिस्सेदारी वित्तीय वर्ष 2006-07 तक एक तिहाई तक पहुँच जायेगी।

व्यक्तिगत कर्ज के इस बाजार में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के मुकाबले आई.सी.आई.सी.आई., एच.डी.एफ.सी, स्टैंडर्ड चार्टर्ड और एच.एस.बी.सी. जैसे निजी व विदेशी बैंकों ने बाजी मार ली है। यही नहीं, ये बैंक उच्च व्यावसायिक शिक्षा के लिए कर्ज देने के साथ ही अपने क्रेडिट कार्ड के जरिए एक सीमा तक नकद कर्ज या बाजार से खरीदारी की सुविधाएँ भी उपलब्ध करा रहे हैं। और ब्याज के रूप में मुनाफा बटोर रहे हैं।

पूरी दुनिया में जबर्दस्त मन्दी का दौर चल रहा है। उदारीकरण का नुस्खा और अफगान, इराक आदि युद्ध की विभीषिकाएँ भी पूँजीवादी- साम्राज्यवादी लुटेरों को ज्यादा राहत नहीं दे पाई। बाजार लगातार नित-नये सामानों से पटता चला जा रहा है। ऐसे में बाजारवाद के इस नये फार्मूले से पूँजीपतियों में थोड़ी राहत की उम्मीद जरूर जगी है।

इसके लिए उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ रही है, तरह-तरह के तीन-तिकड़म करनी पड़ रही है। आसानी से कर्ज उपलब्ध कराने के साथ ही वे कई तरह के उपहार, छूट, सुविधाएँ, स्क्रेच कार्ड, और तमाम सुविधाओं के बहाने जनता को आकर्षित कर रहे हैं। चारों तरफ उन्होंने जाल बिछा रखे हैं, चारे डाल रखे हैं। तरह-तरह के ख्वाब उनके मन में डालते हैं और हैसियत के अनुसार छोटे-बड़े खरीदार वे तैयार कर लेते हैं।

इस प्रकार मन्दी से ग्रस्त पूँजीवादी लुटेरी जमात दोहरे लूट का यह धंधा बखूबी चला रही है–एक तरफ बाजार से खरीदे जाने वाले माल से मुनाफा, दूसरे कर्ज पर लेने वाला ब्याज। यही नहीं, दो और तरीके का लाभ मुनाफाखोरों को हो रहा है–एक तो मन्दी के इस दौर में बाजार में खरीद-फरोख्त बढ़ती है, दूसरे कर्ज के मकड़जाल में उलझा व्यक्ति अपनी हालत अपनी तबाही-बर्बादी पर सोचने की कर्ज मुक्ति की चिन्ता में डूबा रहता है। यह ऐसी मृगमरीचिका है, जिससे बाहर निकलना ही मुश्किल होता है। किसी प्रकार एक कर्ज से मुक्ति मिली नहीं कि नयी जरूरत पैदा हो जाएगी और नये कर्ज का बोझ लद जायेगा।

यही है बाजार अर्थव्यवस्था का मायाजाल।

बेताल उवाच

"राजन, तू बड़ा चालाक और धूर्त है!"

विक्रम ने काफी मशक्कत के बाद एक बार फिर बेताल को अपने कब्जे में किया और अपने कंधे पर लाद कर आगे बढ़ा। अपनी आदत के अनुसार बेताल ने विक्रम से फिर सवाल दागा :

बेतालः राजन, बता। जो वामपंथी तेरे और तेरी नीतियों के घुर विरोधी रहे हैं आखिर वे तेरी नीतियों के समर्थक कैसे बन गये? आखिर तूने क्या जादू किया कि वे तेरे कब्जे में आ गये?

विक्रमः जैसे तू मेरे कब्जे में है। फिर साम्प्रदायिक शक्तियों के खिलाफ हमारी एकता है।...

बेतालः मुझसे क्यों झूठ बोलता है। तेरी नीतियों के खिलाफ तो वे साम्प्रदायिक शक्तियों (भाजपा) को समर्थन देकर और साथ रहकर सरकार भी तो चलवा चुके हैं। सच-सच बता क्या माजरा है।...

विक्रमः सच बताऊँ, तो उनका विरोध नीतियों का उतना नहीं है। अगर कांग्रेस का वे विरोध न करें तो पश्चिम बंगाल और केरल में उनकी सरकार कैसे चले! फिर मजदूरों की पार्टियाँ हैं तो फिर आधार बचाने के लिए उन्हें विरोध तो करना ही पड़ेगा! लेकिन हैं वे बड़े सुलझे हुए। तभी तो आज वे उद्योग जगत के भी प्यारे बने बैठे हैं।

बेतालः लेकिन राजन तूने उन्हें पटाया कैसे?...

विक्रमः यह तो वक्त का तकाजा है। हमें उनकी जरूरत थी उन्हें हमारी। और हम सबको चाहिए थी एक स्थिर सरकार, ताकि विदेशी निवेशक खुशी-खुशी आ सकें और चैन से यहाँ अपना पाँव पसार सकें! सो हमने वामपंथी भाइयों के साथ समन्वय बनाया और सोमनाथ दा को लोकसभा अध्यक्ष के पद से नवाजा।

बेतालः लेकिन उनके लगातार विरोध से सरकार के सामने दिक्कतें भी तो आ रही हैं।

विक्रमः दिक्कतें, कैसी दिक्कतें? लोकतंत्र में सबको विरोध का हक है। और फिर विरोध तो ऊपरी है। बताओ क्या इन डेढ़ सालों में सरकार का कोई काम रुका? विनिवेश का मुद्दा उठा, हमने पहले ही विनिवेश मंत्रालय खत्म करके निवेश आयोग बना दिया। ...और अब तो वे लाभ वाली सार्वजनिक कम्पनियों के शेयर बेचने पर भी सोचने को तैयार हो गये हैं। घाटे वाले सरकारी उपक्रमों को बेचने पर सहमति है ही। अन्य मामलों में चोर दरवाजा है ही, उस पर उनकी मौन सहमति रहती ही है। पेट्रो पदार्थों की कीमतें क्या सरकार ने नहीं बढ़ाई हैं?...

बेतालः लेकिन वे तो व्यवस्था परिवर्तन चाहते हैं...

विक्रमः (हँसते हुए) हाँ वैसी ही परिवर्तित व्यवस्था जैसी 28 साल से वे पश्चिम बंगाल में चला रहे हैं। वही व्यवस्था तो हम भी चला रहे हैं। आखिर क्या फर्क है बुद्धदेव और हमारी नीतियों में। वक्त की नजाकत को सभी समझ रहे हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में हम भी उदार हैं और वामपंथी भाई भी। (फिर धीरे से) असल बात बताऊँ वे गैर मुद्दों पर शोर मचाते हुए बुनियादी मुद्दों से लोगों का ध्यान हटा देते हैं और सरकार चुपचाप अपना काम कर लेती है।

बेतालः चोर-चोर मौसेरे भाई! अच्छा, ईरान के परमाणु मसले पर तो उन्होंने सरकार को खूब घेरा। सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी।

विक्रमः सरकार अपनी उसी विदेश नीति पर तब भी कायम थी और अब भी कायम है...

बेतालः तो फिर समझौता...

विक्रमः वह तो इज्जत ढँकने के लिए बीच का रास्ता है... और बीच का कोई रास्ता होता नहीं। अन्ततः हमारी ही नीति तो कायम है...

बेतालः ...तू है बहुत चालाक और धूर्त भी...

विक्रमः ...तो क्या हमने देश में सबसे लम्बा शासन यूँ ही चलाया है.. . और फिर हमसे कम वे भी नहीं हैं। वे मार्क्सवाद के अध्येता हैं और मार्क्सवाद को वैसे ही लागू कर रहे हैं जैसे सोवियत संघ में ख्रुश्चेव-ब्रेझनेव-गोर्बाचेव ने लागू किया। या उससे भी ज्यादा कुशलता से जैसे आज के चीनी शासक लागू कर रहे हैं। वे बाजार अर्थव्यवस्था के पक्के हिमायती भी हैं और सर्वहारा वर्ग के हिमायती भी।. .. क्या समन्वय है!...

बेताल : बनी रहे जोड़ी...

(यह कहते हुए बेताल विक्रम के कंधे से उछलकर अपनी डाल की ओर वापस लौट पड़ा और हँसते हुए कहता गया)

...राजन, मैं तो चला, तू भले ही इन संसदीय वामपंथियों को अपना हिमायती बना ले। पर मैं तेरे कब्जे में आने वाला नहीं हूँ। मेरी मुक्ति तेरे हाथों नहीं होने वाली और न ही तेरे सहयोगी रंगे सियारों के हाथों।...

–राम अवतार

खदानों में खटने वाले बाल मजदूरों की मुक्ति

पूँजीवादी-साम्राज्यवादी लुटेरे तंत्र के खात्मे के बाद ही सम्भव

(कार्यालय संवाददाता)

लखनऊ। पूँजीवादी लुटेरों की सबसे बड़ी चाहत यही होती है कि सस्ते से सस्ते मूल्य पर ज्यादा से ज्यादा श्रम खरीदें। इसमें सबसे मुफीद हैं स्त्रियों और बच्चों को खटाना। चूँकि इन मुनाफाखोरों की न तो कोई नैतिकता होती है और न ही संवेदनाएँ, लिहाजा उन बच्चों तक को बेहद खतरनाक कामों में झोंकने में उन्हें कोई गुरेज नहीं होता है, जिनकी उम्र पढ़ने-लिखने की होती है। गरीबी से तंगहाल ये बच्चे खदानों तक में काम करने को मजबूर होते हैं।

वैसे तो बाल श्रम में लगी हुई आबादी–यानी बच्चे होटल की प्लेटें धुलने, बसों-ठेलों पर मूंगफलियाँ बेचने से लेकर, कालीन बनाने, पीतल-ताँबे के सामान बनाने, मिलों-कारखानों- दुकानों में खटने तक का काम करते ही हैं, लेकिन वे बेहद खतरनाक परिस्थितियों में खदानों तक में खटने को मजबूर रहते हैं।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) की पत्रिका 'वर्ल्ड ऑफ वर्क' के ताजा अंक में छपी रिपोर्ट के अनुसार दुनिया भर में आज भी पाँच से सत्रह साल की उम्र के दस लाख से अधिक बच्चे अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए दयनीय परिस्थितियों में खदानों में जोखिम भरे काम करने को मजबूर हैं। ये बाल मजदूर गहरी खदानों में प्रतिकूल परिस्थितियों में धातु को छाँटने, खान से पानी निकालने और खदान साफ करने जैसे खतरनाक काम करते हैं। मौलिक अधिकारों से वंचित ये बच्चे काम के लिए ऐसे संकरे मार्ग से खान में नीचे भेजे जाते हैं जहाँ तापमान काफी अधिक होता है।

रिपोर्ट के अनुसार खान में चट्टानों के खिसकने की आशंका, विस्फोट होने और खान की दीवारों के गिरने का भय हमेशा बना रहता है। रिपोर्ट में सोने की खदानों में काम करने वाले बाल मजदूरों के बारे में लिखा गया है कि इन खदानों में पारे का प्रयोग होने से बच्चों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे उनके स्नायु तंत्र को हमेशा के लिए आघात पहुँच सकता है।

रिपोर्ट में इस बात का खुलासा किया गया है कि अधिकांश बाल मजदूर आज भी असंगठित खनन क्षेत्र में काम करते हैं। यह पाया गया है कि इस तरह की खनन गतिविधियाँ बिना किसी लाइसेंस या अनुमति के खुलेआम चलाई जाती हैं। इसी वजह से इनमें बाल मजदूरों का अधिक शोषण होता है। वैसे आई.एल.ओ. के वर्ष 1965 में हुए 123वें समझौते के अनुसार खान में काम करने वाले मजदूरों की आयु कम से कम 16 वर्ष होनी चाहिए, लेकिन ऐसे कानूनों की धज्जियाँ उड़ती रहती हैं।

पत्रिका में आई.एल.ओ. के खनन उद्योग विशेषज्ञ नार्मन जेनिंग्स के हवाले से कहा गया है कि जितने असंगठित और दूरवर्ती क्षेत्रों में खनन कार्य होगा उतने ही ज्यादा बाल मजदूर इन गतिविधियों में लगे होंगे।

वैसे तो इस वर्ष 12 जून को जिनेवा में सम्पन्न विश्व बाल श्रम दिवस के अवसर पर एक बार फिर बाल श्रम पर घड़ियाली आँसू बहाये गये। यहाँ तक कि 15 देशों के मजदूरों, रोजगार प्रदाताओं और सरकार के प्रतिनिधियों ने अपने देश में असंगठित लघु खनन क्षेत्रों में बाल मजदूरी को अगले पाँच से दस साल में समाप्त करने का संकल्प भी बाँधा। लेकिन यह एक कड़वी सच्चाई है कि मुनाफे की अंधी हवस में पगलाए पूँजीवादी सत्ताधारियों द्वारा इसे खत्म करना तो दूर, इसकी बढ़ती संख्या पर रोक तक नहीं लगायी जा सकती।

चाहे खदानों में काम करने वाले बच्चों के भविष्य का सवाल हो या अन्य कामों में लगे बच्चों की मुक्ति का सवाल, यह वर्तमान आर्थिक-सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन का सवाल है और जब तक बाजार और मुनाफे की यह दुनिया कायम रहेगी, किसी भी प्रकार के शोषण-उत्पीड़न का खात्मा नहीं हो सकता। एक मानव केन्द्रित व्यवस्था में ही यह संभव है–यानी पूँजीवादी- साम्राज्यवादी लुटेरी व्यवस्था के अन्त के बाद।

पेट्रोपदार्थों में बेरोकटोक वृद्धि के लिए समिति गठित

(बिगुल संवाददाता)

आखिकार सरकार ने पेट्रोलियम पदार्थों की कभी भी और कितनी भी कीमत बढ़ाने का फार्मूला बना ही लिया। उसे अब संसद में विरोध की नौटंकी भी नहीं झेलनी पड़ेगी। इसके लिए सरकार ने प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष डा. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया है। यह समिति पेट्रो पदार्थों की कीमत बढ़ाने की नीति तैयार करेगी। इसके बाद दाम बढ़ाने के लिए कैबिनेट की मंजूरी नहीं लेनी पड़ेगी। समिति छह माह के भीतर अपने सुझाव दे देगी।

इस समिति का उद्देश्य और परिणाम तय है। यह पेट्रोलियम पदार्थों के लिए दीर्घकालिक मूल्य नीति तैयार करेगी। वह ऐसी नीति बनाएगी जिसके तहत अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मूल्य वृद्धि पर तेल कम्पनियों की आर्थिक स्थिति (यानी मुनाफा) प्रभावित न हो। कीमतों में बढ़ोत्तरी को सरकार व तेल कम्पनियों के साथ-साथ उपभोक्ता भी वहन करें। एक ऐसी 'स्वतः पारदर्शी व्यवस्था' बना दी जाए ताकि तेल कम्पनियों को अपने उत्पाद के दाम बढ़ाने के लिए सरकार की शरण में न जाना पड़े। समिति एल.पी.जी. (गैस) व कैरोसीन (मिट्टी का तेल) पर दी जाने वाली सब्सिडी के बारे में भी अपने सुझाव देगी।

कुल मिलाकर, इस समिति का मुख्य उद्देश्य डीजल-पेट्रोल-एल.पी.जी-कैरोसीन की बेरोकटोक मूल्य वृद्धि की योजना बनाना और आम जनता की जेब पर खुली डकैती की एक और राह साफ करना है।

–आकाश दीप

परिकल्पना प्रकाशन और राहुल फाउण्डेशन से जनवरी, 2006 में प्रकाश्य कुछ प्रमुख पुस्तकें

चुनी हुई कहानियाँ (तीसरा खंड)	– मक्सिम गोर्की
मेरा बचपन/जीवन की राहों पर/ मेरे विश्वविद्यालय (उपन्यास त्रयी)	– गोर्की
वे तीन (उपन्यास)	– गोर्की
करवट (नाटक)	– गोर्की
तरुणाई का तराना (उपन्यास)	– याङ मो
तीन टके का उपन्यास	– बेर्टोल्ट ब्रेष्ट
आयरन हील (उपन्यास)	– जैक लण्डन
पाब्लो नेरूदा की कविताएँ	
उपन्यास और जनसमुदाय	– रैल्फ फॉक्स
चुनी हुई कृतियाँ	– गणेशशंकर विद्यार्थी
जेल डायरी (हो चि मिन्ह की कविताएँ)	
लाल झण्डे के नीचे (उपन्यास)	– लाओ श
वसंत के रेशम के कीड़े (कहानियाँ)	– माओ तुन
वसंत (कहानियाँ)	– सेर्गेई अंतोनोव
क्रांति झंझा की अनुगूँजें (अक्टूबर क्रान्ति के बारे में कहानियां व संस्मरण)	
मजदूरी, दाम और मुनाफा	– कार्ल मार्क्स
फ्रांस में वर्ग संघर्ष	– कार्ल मार्क्स
परिवार, व्यक्तिगत संपत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति	– फ्रेडरिक एंगेल्स
सामाजिक जनवाद के दो रणकौशल	– लेनिन
धर्म के बारे में	– मार्क्स-एंगेल्स
एक कदम आगे, दो कदम पीछे	– लेनिन
राज्यसत्ता क्या है?	– लेनिन
पार्टी कार्य के बारे में	– लेनिन
जुझारू भौतिकवाद	– प्लेखानोव
मार्क्सवाद की मूलभूत समस्याएँ	– प्लेखानोव
कम्युनिस्ट घोषणापत्र	– डी. रियाज़ानोव
द्वंद्वात्मक भौतिकवाद	– डेविड गेस्ट
मार्क्सवाद क्या है?	– एमिल बर्न्स
कम्युनिज्म क्या है?	– आर.डब्ल्यू. राब्सन
पार्टी और दर्शन	– मॉरिस कॉर्नफोर्थ
भौतिकवाद और समाज का विज्ञान	– मॉरिस कॉर्नफोर्थ

अमेरिकी हुक्मरानों के मानवता विरोधी अपराधों को दुनिया की जनता कभी माफ नहीं कर सकती

दुनिया को जनतंत्र और मानवता का पाठ पढ़ाने वाले अमेरिकी हुक्मरानों के मानवता विरोधी अपराधों का कच्चा-चिट्ठा समय-समय पर जनता के सामने खुलता रहा है। अन्तरराष्ट्रीय मीडिया पर अमेरिकी पूँजी के वर्चस्व और निगरानी-नियंत्रण के बावजूद पूँजीवादी दुनिया के आपसी अन्तरविरोधों के चलते इन अपराधों की खबरें सामने आती रहती हैं। ताजा रहस्योद्घाटन के अनुसार अमेरिकी फौजों ने इराक युद्ध के दौरान इराकी नागरिकों के ऊपर घातक सफेद फास्फोरस से बने बमों का इस्तेमाल किया था।

यह रहस्योद्घाटन सरकारी इतालवी टीवी ने एक कार्यक्रम के दौरान किया। पिछले 22 नवम्बर को इतालवी टीवी ने इससे सम्बन्धित एक डाक्युमेण्ट्री फिल्म दिखायी। इटली के एक भूतपूर्व नौसेना अधिकारी जेफ ऐंगेलहार्ट ने इस डाक्युमेण्ट्री में सफेद फास्फोरस बमों की विनाशक क्षमता का ब्योरा देते हुए बताया कि उन्होंने बमबारी के बाद खुद बच्चों और महिलाओं के जले हुए शरीरों को देखा था। उन्होंने कहा कि मैंने देखा, "जले हुए शरीरों, झुलसे हुए बच्चों और महिलाओं को। सफेद फास्फोरस किसी को नहीं बख्शता। बम फूटने के बाद वायुमण्डल में एक बादल-सा छा जाता है और 150 मीटर के दायरे में हरेक आदमी और जानवर को भस्म कर डालता है।"

कई स्रोतों ने अमेरिका पर यह भी आरोप लगाया है कि उसने फालुजा में घातक नापाम बमों का भी इस्तेमाल किया जो उसने वियतनाम युद्ध के दौरान नागरिकों पर किया था। इन आरोपों के बाद जैसी उम्मीद की जा सकती है अमेरिकी हुक्मरानों ने इसका खण्डन किया। दुनिया जानती है कि झूठ बोलने के बारे में भी अमेरिकी हुक्मरानों का दुनिया में कोई सानी नहीं है।

अमेरिकी सरकार ने अपनी वेबसाइट में यह तो स्वीकार किया है कि उसने इराक युद्ध के दौरान सफेद फास्फोरस का इस्तेमाल किया था लेकिन इस बात से इनकार किया है कि इसका इस्तेमाल नागरिकों पर किया गया था। सरकारी बयान में यह झूठी कहानी गढ़ी गयी है : "रात के समय दुश्मनों के ठिकानों का पता लगाने के लिए रोशनी करने के वास्ते हवा में इन बमों को छोड़ा गया था, न कि दुश्मन के सिपाहियों पर।"

अमेरिकी रक्षा विभाग पेण्टागन के अधिकारियों ने शुरू में तो यह झूठ बोला कि सफेद फास्फोरस एक परम्परागत हथियार है और उन्हें पता नहीं कि इसका इस्तेमाल नवम्बर 2004 में फालुजा में किया गया था या नहीं। लेकिन बाद में स्वीकार किया कि सफेद फास्फोरस का इस्तेमाल किया था लेकिन नागरिकों या फौजियों को निशाना बनाकर नहीं।

कुछ दिन बाद सरकारी बयान में भी संशोधन कर यह स्वीकार किया गया कि सफेद फास्फोरस का इस्तेमाल किया गया था लेकिन हेकड़ी के साथ यह दुहराया गया कि उसने इराक युद्ध के दौरान ऐसा कोई हथियार नहीं इस्तेमाल किया था जो गैरकानूनी है या किसी भी अन्तरराष्ट्रीय कानून के तहत प्रतिबन्धित है।

बहरहाल, इस तमाम झूठ फरेब के बावजूद सच्चाई अब जगजाहिर हो चुकी है। ठीक इसी तरह अमेरिकी हुक्मरानों ने इराक के अबू गरेब जेल और क्यूबा स्थित ग्वान्तानामों बे जेल के कैदियों के साथ मानवता को शर्मसार कर देने वाले तरीकों से यातनाएँ देने के मामलों के उजागर होने के बाद शुरू में झूठ बोला था। लेकिन जब उन अमानुषिक अत्याचारों की फोटो जारी हुई तो स्वीकार करने के अलावा कोई चारा नहीं बचा। लेकिन फिर अपने खूँखार चेहरों को छिपाने के लिए जाँच का नाटक करना शुरू किया। कई महीनों तक चले जाँच के नाटक के बाद एक महिला सैनिक को सजा सुनाकर पल्ला झाड़ लिया गया। यह सैनिक भी बन्दियों को यातना देने में शामिल थी लेकिन उसका कहना था कि ऐसा करने के लिए उसे ऊपर से आदेश मिला हुआ था।

पिछले 19 नवम्बर को इस महिला सैनिक जेनिस कार्पिस्की ने अपनी आत्मकथा को जारी करते हुए कहा कि उसे बलि का बकरा बनाया गया है। कैदियों को यातना देने के लिए वरिष्ठ सैन्य अधिकारी और व्हाइट हाउस दोषी हैं। नवम्बर के पहले सप्ताह में अमेरिकी विदेश मंत्रालय में कार्यरत पूर्व विदेश मंत्री कोलिन पॉवेल के एक सहयोगी ने भी साफ तौर पर कैदियों से पूछताछ के लिए यातना देने का आदेश देने के बारे में उपराष्ट्रपति डिक चेनी पर आरोप लगाकर चौंकाया था। इसके बाद अमेरिकी रक्षा विभाग बचाव की मुद्रा में आ गया था।

बहरहाल, इन सब सच्चाइयों के उजागर होने के बावजूद अमेरिकी हुक्मरान अपनी चिरपरिचित हेकड़ी का परिचय दिखाते हुए गुआन्तानामों बे जेल का निरीक्षण करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधिमण्डल को इजाजत नहीं दे रहे हैं। उनका यह रवैया अपने आप उनके अपराधों को उजागर करता है। गुआन्तानामों बे में सौ से अधिक कैदी पिछले 100 से ज्यादा दिनों से भूख हड़ताल पर हैं जिनमें से अधिकांश की हालत बेहद नाजुक हो चुकी है।

बहरहाल, आज अमेरिकी हुक्मरान चाहे जितनी हेकड़ी दिखा लें, दुनिया की जनता उनके मानवता विरोधी अपराधों की सजा जरूर देगी।

आनन्द वर्धन

'सभ्यता के संघर्ष' के नाम पर तेल पर कब्जे की तैयारी

अब ईरान पर हमले की बारी

साम्राज्यवादी लुटेरों के सरगना अमेरिका ने अफगानिस्तान और इराक के बाद अब अगला निशाना ईरान को बनाया है। उसने झूठ और बेशर्मी का एक और खेल शुरू कर दिया है। ईरान में परमाणु हथियारों के निर्माण की तथाकथित प्रामाणिक सूचना को आधार बनाकर उसने तेल के दूसरे सबसे बड़े भण्डार वाले इस देश पर हमले की तैयारी कर ली है।

आज विश्व अर्थव्यवस्था में तेल की अहम भूमिका है। यह कोई छुपा हुआ तथ्य नहीं है कि तेल पर कब्जे को लेकर साम्राज्यवादी मुल्कों में संघर्ष और खींचतान जारी है। कब्जे में आज वह शीर्ष पर खड़ा है। अमेरिका दुनिया का सबसे बड़ा तेल आयातक देश है। विश्व की पाँच फीसदी से कम जनसंख्या वाले इस देश में पूरे विश्व की तेल आपूर्ति का 25 फीसदी तेल खपत होता है। इसलिए उसकी निगाह मध्यपूर्व के तेल भण्डार पर लगी रही है। पश्चिम एशिया के कई तेल उत्पादक देशों को इसने अपनी जेब में कर रखा है। इनमें तेल संसाधनों के मामले में विश्व में शीर्ष पर बैठा सऊदी अरब प्रमुख है। कुवैत पर भी इसकी चौकीदारी है। हालाँकि दस वर्षों की नाकेबन्दी और घातक हथियारों के जखीरा होने की झूठ की टट्टी खड़ा करके तीसरे विपुल भण्डार वाले इराक को नेस्तनाबूत करने के बावजूद उसे अपेक्षित सफलता तो नहीं मिली और अपनी कठपुतली सरकार बैठाने के बावजूद उसे वहाँ जनता के प्रतिरोध का सामना आज भी करना पड़ रहा है। इराक में तेल उत्पादन 50 लाख बैरल प्रतिदिन होने का उसका सपना धूल-धूसरित हो गया और तमाम कोशिशों के बावजूद वहाँ उत्पादन 19 लाख बैरल प्रतिदिन ही है। अब उसके कदम ईरान की ओर बढ़ने लगे हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश द्वारा इराक युद्ध को क्रुसेड (धर्मयुद्ध) और 'ईश्वर के आदेश से संचालित' बताने के साथ ही मध्यपूर्व के अपने तेल युद्ध को 'सभ्यताओं के संघर्ष' के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। इस्लामिक कट्टरपन को विश्व की सभ्यता के लिए सबसे बड़े खतरे के रूप में पेश करते हुए आधुनिक सभ्यता के सबसे बड़े ठेकेदार अमेरिका का सरकारी बुद्धिजीवी सैमुअल हटिंग्टन ने इस आर्थिक संघर्ष को सभ्यताओं के सामूहिक संघर्ष के रूप में स्थापित करने की भरपूर कोशिश की है।

इसकी वजह एकदम साफ है। यह जगजाहिर सी बात है कि प्राकृतिक तेल के क्षेत्रों पर मुख्यतः इस्लामिक जगत का ही आधिपत्य है। और इस पर कब्जे के लिए अमेरिका को उनसे ही टकराना है। इसलिए पाँच सौ वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी बर्बरता की मिसालें पेश करने वाले सभ्यता के इस ठेकेदार द्वारा इसे 'सभ्यताओं के संघर्ष' के रूप में ही प्रचारित करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यही तो है सभ्यता का संघर्ष जिसमें विश्व की प्राचीन और महान सभ्यताएँ धूंल धूसरित हो जाती हैं। अफगानिस्तान में सभ्यता के इस संघर्ष में बामियान की ढाई हजार साल पुरानी बुद्ध प्रतिमाएँ ध्वस्त हो गईं। इराक में सभ्यता के इस संघर्ष में बेबीलोनिया की संस्कृति की तीन हजार साल की संचित धरोहरें लुटेरों के हवाले हो गयीं। अब ईरान की प्राचीन सभ्यता निशाने पर है। आज का अमेरिका वहाँ की मूल सभ्यताओं के विनाश पर ही सर ऊँचा किये खड़ा है। इन्हीं तबाह सभ्यताओं में वह 'माया' सभ्यता भी है जिसकी स्मृति का शोकगीत है पाब्लो नेरूदा की कविता 'मच्चू पिच्चू के शिखर'।

हटिंग्टन बड़े ही उद्दण्ड और हिटलरी अन्दाज में कहता है कि पश्चिमी संस्कृति के विस्तार के लिए उसकी सैनिक शक्ति की श्रेष्ठता जरूरी है। वह हेठी के साथ लिखता है, "... संस्कृति, जैसी कि हमने दलील दी है, शक्ति के दम पर फैलती है। अगर गैर-पश्चिमी समाजों को फिर से पश्चिमी संस्कृति द्वारा निर्मित होना है तो ऐसा पश्चिमी शक्ति के फैलाव, उसके हस्तक्षेप और प्रभाव में ही हो पाएगा। साम्राज्यवाद सार्वजनीनता की तार्किक जननी है ...।"

बहरहाल, 'सभ्यता' के अपने ईरान पर हमले के लिए वह माहौल बनाना लगातार जारी रखे हुए है। घातक हथियारों के सबसे बड़े स्टॉकिस्ट अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ईरान में परमाणु हथियार के निर्माण की 'प्रामाणिक' सूचना का दावा कर रहा है। अमेरिकी विदेश मंत्री कोंडोलिजा राइस ने अपनी मास्को यात्रा के दौरान स्पष्ट रूप से कहा कि संवर्द्धित यूरेनियम के मामले में 'ईरान पर विश्वास नहीं' किया जा सकता है। इसके सारे 'थिंक टैंक' इसको लेकर बवाल मचाए हुए हैं। ब्रिटेन तो अमेरिका के सुर में ही बोलता है। भारत भी अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी में ईरान के खिलाफ मतदान कर चुका है।

लेकिन इस बार अमेरिका के ईरान पर हमले की राह इतनी आसान भी नहीं है। अपनी अर्थव्यवस्था के विकास के चलते दूसरे सबसे बड़े तेल आयातक देश के रूप में उभरे चीन के व्यापारिक हित सीधे ईरान से जुड़े हैं। रूस भी अपने कारणों से विरोधी खेमे में ही नज़र आ रहा है। दुनिया के कुछ अन्य साम्राज्यवादी देश भी अपने-अपने आर्थिक हितों के कारण अमेरिकी हमले के पक्ष में नहीं होंगे।

परन्तु दूसरा जो सबसे महत्वपूर्ण कारक है वह है मध्यपूर्व की जनता। अफगानिस्तान और इराक युद्ध से आहत यहाँ की जनता में अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ जो गहरी नफरत है, वह बारूद का काम करेगी। अपने अभिमान में चूर इस पगलाये हाथी ने अगर इस बार ईरान में घुसने का प्रयास किया तो यह उसके लिए कब्रगाह साबित होगा।

–योगेश पंत

श्रमिकों के लिए यातना शिविर

(पृष्ठ 1 से आगे)

को मनमानी छँटनी करने, ठेके पर मजदूर रखने और तमाम श्रम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाकर मजदूरों का बर्बर शोषण उत्पीड़न करने की खुली छूट दे रखी है। प्रदेश की पुलिस पूँजीपतियों के भाड़े के गुण्डों जैसा व्यवहार कर रही है। किसी मजदूर ने जरा भी जुबान खोली तो उसे न केवल नौकरी से हाथ धोना पड़ता है बल्कि पुलिस और गुण्डों से उसकी पिटाई करायी जाती है। अगर किसी कम्पनी में कुछ मजदूरों ने संगठित होकर यूनियन बनाने की सोची तो उनकी खैर नहीं। खाकी वर्दीधारी गुण्डे आगे बढ़े हुए मजदूरों को इतना आतंकित कर रहे हैं कि वे कदम पीछे हटाकर चुपचाप गुलामों की तरह खटने में अपनी भलाई समझ रहे हैं। कारखाने यातना शिविर बने हुए हैं।

भाजपा सरकारों की इन घोर मजदूर विरोधी कारगुजारियों पर किसी को हैरत नहीं होनी चाहिए। इस पार्टी की विचारधारा ही घोर मजदूर विरोधी विचारधारा है। इसने मजदूरों को संघर्षों से विमुख करने और उन्हें मालिकों का दास बना देने के लिए मजदूर वर्ग के बीच अपने घुसपैठिये छोड़ रखे हैं। भारतीय मजदूर संघ के जरिये यह पार्टी और इसका मातृ संगठन आर.एस.एस. यही काम करता है। भारतीय संस्कृति के नाम पर यह मजदूरों के अन्तरराष्ट्रीय त्यौहार मई दिवस को मनाने का विरोध करता है और उसके स्थान पर विश्वकर्मा पूजा को प्रोत्साहित करता है।

भाजपा शासित प्रदेशों के मजदूरों के भीतर आक्रोश लगातार गहराता जा रहा है जो किसी भी समय किसी भी रूप में फूट सकता है।

"क्रान्तिकारी सामाजिक जनवाद सुधारों के लिए संघर्ष को स्वतंत्रता और समाजवाद के क्रान्तिकारी संघर्ष के अधीन उसी तरह रखता है जैसे कोई एक भाग अपने पूर्ण के अधीन होता है।"...

"अर्थवादी" और आतंकवादी स्वयंस्फूर्ति के दो छोरों की पूजा करते हैं; "अर्थवादी" "शुद्ध मजदूर आन्दोलन" की स्वयंस्फूर्ति की पूजा करते हैं, जबकि आतंकवादी उन बुद्धिजीवियों की प्रज्वलित क्रोध की स्वयंस्फूर्ति की पूजा करते हैं, जिनमें क्रान्तिकारी कार्य को मजदूर आन्दोलन से जोड़ने की या तो क्षमता नहीं होती या इसका अवसर नहीं मिलता। जो लोग इस बात की सम्भावना में विश्वास खो चुके हैं, या जिन्होंने कभी इसपर विश्वास नहीं किया, उनके लिए अपने क्रोध तथा क्रान्तिकारी क्रियाशीलता को व्यक्त करने के लिए आतंक के सिवा कोई दूसरा मार्ग ढूँढ़ना सचमुच कठिन है।"

–लेनिन

ऊबी जनता क्रान्तिकारी विकल्प चाहती है!

(पृष्ठ 1 का शेष)

की तमाम राजनीतिक पार्टियों के बीच बुनियादी नीतिगत मसलों पर कोई विरोध नहीं रह गया है। इसीलिए केन्द्र या राज्यों में सत्तारूढ़ होने वाली किसी भी पार्टी या गठबन्धन की सरकार नयी आर्थिक नीतियों को आगे बढ़ाने की वचनबद्धता दुहराती है। यह देश के पूँजीवादी विकास के उस मुकाम पर पहुँचने का सूचक है जब बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग के साथ शहरी और देहाती छोटे पूँजीपति वर्गों के बीच लूट के माल के बँटवारे के रिश्ते बुनियादी तौर पर तय हो चुके हैं। इसीलिए किसी भी राष्ट्रीय बुर्जुआ पार्टी के साथ गठबन्धन कायम करने में किसी भी क्षेत्रीय बुर्जुआ पार्टी को कोई गुरेज नहीं होता। इसीलिए चुनावी गठबन्धन के नाम पर तरह-तरह के अवसरवादी गठबन्धन सामने आते रहते हैं।

बिहार चुनावों में भी ऐसे घटिया अवसरवादी गठबन्धनों के नायाब नमूने सामने आये। खुद को धर्मनिरपेक्ष मानने वाले नीतीश कुमार और जार्ज फर्नाण्डीज को उग्र हिन्दुत्ववादी राजनीतिक विचारधारा की झण्डाबरदार भारतीय जनता पार्टी के साथ गठबन्धन कायम करने में कोई उसूली रुकावट पेश नहीं आयी। लालू प्रसाद और राम विलास पासवान की राजद और लोजपा केन्द्र की कांग्रेसी नेतृत्व वाली सरकार को समर्थन दे रही हैं लेकिन बिहार में दोनों ने एक दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़ा। इसी तरह भाकपा और माकपा दोनों पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार की साझीदार हैं और केन्द्र सरकार को भी समर्थन दे रही हैं लेकिन बिहार चुनाव में भाकपा लोकजनशक्ति पार्टी के गठबन्धन में शामिल थी तो माकपा लालू प्रसाद के गठबन्धन के साथ थी। यह सब अब इतना खुल्लम-खुल्ला है कि आम जनता के लिए यह समझना कोई कठिन नहीं कि कुर्सी हथियाने के लिए ये पार्टियाँ अवसरवाद की पराकाष्ठा को भी लाँघ सकती हैं। अपराधियों को टिकट देने के मामले में भी सभी पार्टियों में जमकर होड़ मची हुई थी।

पूँजीवादी चुनावी राजनीति के इस घिनौने चरित्र को देखते हुए अब आम जनता भी चुनावों से किसी किस्म के बदलाव की उम्मीद नहीं पालती। वह अच्छी तरह अब समझ चुकी है कि इन चुनावों में फैसला केवल इस बात का होता है कि शासक वर्गों का कौन सा लुटेरा गिरोह अगले चुनावों के पहले तक जनता की सवारी गाँठेगा। दुनिया भर में कायम पूँजीवादी जनतंत्र की इस सच्चाई को अब देश की आम जनता अपने अनुभव से समझती जा रही है कि सबसे आदर्श रूप में भी यह केवल समाज के सम्पत्तिवान वर्गों के लिए जनतंत्र और गरीब मेहनतकश जनता के लिए तानाशाही ही होता है।

देश की जनता पिछले 58 वर्षों में देश की पूँजीवादी चुनावी राजनीति के दायरे के भीतर के तमाम विकल्पों को आजमा चुकी है, परख चुकी है। अब वह क्रान्तिकारी विकल्प चाहती है। लेकिन जब तक यह विकल्प ठोस रूप में जनता के सामने नहीं आयेगा तब तक विकल्पहीनता की इस स्थिति में कोई न कोई पूँजीवादी चुनावी पार्टी या गठबन्धन जनतंत्र के इस खेल में विजेता बनकर जनता पर सवारी गाँठती रहेगी।

आज मेहनतकश जनता के अगुआ दस्तों के सामने सबसे अहम राजनीतिक कार्यभार यही है कि वे देश के मौजूदा पूँजीवादी जनतंत्र का जनता के सामने न केवल ठोस ढंग से भण्डाफोड़ करें बल्कि क्रान्तिकारी विकल्प की ठोस रूपरेखा या उसका खाका पेश करें। आम मेहनतकश जनता के दिलों में इतिहास के उदाहरणों और अनुभवों के आधार पर साफ तौर पर यह बात बिठानी होगी कि मेहनतकश अवाम न केवल पूँजीवादी जनतंत्र को नेस्तनाबूद करने में सक्षम है वरन वह अपना सच्चा जनतंत्र कायम कर सकता है। ऐसा जनतंत्र जिसमें उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकश जनता का नियंत्रण होगा और फैसले लेने व उन्हें लागू करने की पूरी शक्ति उसी के हाथों में होगी। ऐसे जनतंत्र में समाज के शोषक उत्पीड़क वर्गों, दूसरों के श्रम पर पलने वाले परजीवियों के लिए कोई जगह नहीं होगी।

पूँजीवादी जनतंत्र के क्रान्तिकारी विकल्प का मेहनतकशों के बीच प्रचार-प्रसार करने के लिये व्यापक एवं सघन आम राजनीतिक प्रचार-प्रसार की कार्रवाइयों को संगठित करना होगा और बुनियादी मुद्दों पर उसे उसके संघर्ष के साथ कुशलतापूर्वक जोड़ना होगा। पूँजीवादी जनतंत्र की कलई जनता के सामने चाहे जितनी उघड़ जाये वह अपने आप समाप्त नहीं होगा। इसका अन्तिम संस्कार करने की जिम्मेदारी इतिहास ने मेहनतकश अवाम के ही कन्धों पर सौंपी है।

बकलमे-खुद

इस स्तम्भ के बारे में

इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम जिन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मजदूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मजदूर संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करते हैं—कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मजदूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचंद उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्जाक और चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की जिन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की जिन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर हैं। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मजदूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आम जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा "वामपंथी कुलीनों" का है। ये "कलाजगत के शरीफजादे" हैं जो प्रायः प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की जिन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचंद का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं। समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों- कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की जिन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मजदूर भी होंगे। भारत का मजदूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मजदूर या मजदूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा। आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मजदूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मजदूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

*इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर इस स्तम्भ की शुरुआत की गयी है। मुमकिन है कि मजदूरों और मजदूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। जिन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताजगी हो। हमारा यह अनुरोध है कि मजदूर साथी अपनी जिन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें। **साथ ही प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी भेजें।***

*इस अंक में हम एक नौजवान कार्यकर्ता **प्रसेन** का शब्दचित्र छाप रहे हैं।*

—सम्पादक मण्डल

एक सपने की हत्या

पूरा मोहल्ला छावनी में तब्दील हो चुका था। नुक्कड़ों पर, चौराहों पर पुलिस तथा अर्द्धसैनिक बल के जवान चार-छह की सँख्या में बैठे हुए थे। पीसीआर की गाड़ियाँ गश्त लगा रही थीं। अभी दोपहर में ही तो लोगों ने तीन पुलिस वालों को पीटा था। जवाब में पूरी फोर्स आयी। आँसू गैस के गोले दागे गये। और घरों में घुसकर महिलाओं, बच्चों, बूढ़ों समेत जो भी मिला उसे पीटा गया। कुछ लोग घरों से भाग सके। बाकी 12 लोगों को पुलिस पकड़ कर ले गयी। शाम तक उत्तेजित भीड़ पर पुलिस का आतंक कायम हो चुका था। आस-पास कर्फ्यू जैसी स्थिति कायम कर दी गयी। रात के साढ़े सात से आठ बजे तक थोड़ी छूट दी गयी परन्तु गलियाँ लगभग खाली ही रहीं। पुलिस ने हैलोजन लाइट की व्यवस्था की थी। चारों ओर सन्नाटा था। बस बीच-बीच में पीसीआर की वैन का सायरन या कुत्तों के भौंकने की आवाज गूँज जाती थी।

रात के करीब नौ बजे काम से लौटा तो माहौल उखड़ा-सा लगा। दुकानें बन्द थीं। घर पहुँचने पर पता चला कि 15 दिन से लापता जगदीश की पुलिस हिरासत में मौत हो गयी। क्यों? कैसे? का सवाल मेरे दिमाग में मथ रहा था। अगली सुबह शिकारी कुत्तों जैसी टापती पुलिसिया निगाहों से बचते हुए जगदीश के घर पहुँचा। जगदीश के घर मेरा आना-जाना था। सारा सामान बिखरा पड़ा था। जगदीश की पत्नी की लाल आँखें घुंघला और सूजा चेहरा भीगा हुआ था। वह उठकर रोते हुए दूसरे कमरे में चली गयी। दोनों बच्चे मेरी ओर एकटक देख रहे थे। उनके चेहरों पर कोई भाव न था, बस आँखों से निराहता झलक रही थी। जगदीश की बूढ़ी माँ ने हिम्मत करके जो बताया वह आँसुओं के रेले में रह-रह कर टूट जा रहा था। फिर भी, जितना जगदीश को मैं जानता था, इस घटना के बारे में उसकी माँ और लोगों से मैं जो कुछ जान पाया उसी को आप सभी के सामने रखने की कोशिश करूँगा।

पिता की मौत के बाद घर की जिम्मेदारी जगदीश के कंधों पर आ पड़ी। छोटी उम्र से ही जगदीश गहनों की डाई बनाने वाले काम में लग गया। शुरू में तो दबाव थोड़ा कम था परन्तु शादी और दो बच्चों के पैदा होने से बोझ काफी बढ़ गया। डाई के काम में अब तक जगदीश बहुत निपुण हो चुका था। हर नौजवान की तरह उसने भी सुनहरे ख्वाब पाले। जिनको पूरा करने के लिए वह दिन-रात कड़ी मेहनत करता। अपनी मेहनत और निपुणता से वह मालिक का बहुत खास आदमी बन गया था। घर का दबाव तो खैर कम हो गया परन्तु पैसे वाला आदमी बनने की इच्छा रह-रह कर जोर मारती। कभी-कभार मुझसे मुलाकात होती तो वह अपनी हसरतों का खुलासा करता। हर इंसान चाहता है कि उसकी जिन्दगी बेहतर हो, उसकी मेहनत और निपुणता में तो मुझे कोई सन्देह न था पर धनी आदमी बनने के लिए केवल यही दो चीज चाहिए, मैं इससे सहमत न था। बहस होने पर वह कुछ नाम गिनाता जो गरीबी से उठकर अमीरों की जमात में खड़े हुए थे। मैं उसे समझाता कि अपवाद हर जगह होता है उनसे भी योग्य और मेहनती करोड़ो नौजवान सड़कों पर धूल फाँक रहे हैं। लेकिन वह अपने को उनसे हट कर गिनता था। शुरू में सभी नौजवान ऐसा ही सोचते हैं।

इधर बीच में मिलना-जुलना काफी कम हो गया था। अभी एक महीने पहले मिला तो बोला, "यार, सोच रहा हूँ अपना धंधा शुरू कर दूँ। मालिक के साथ काम करके तो कुछ नहीं हो सकता। हाडतोड़ मेहनत मैं करूँ लाभ सारा मालिक उठाये। पर वह यहीं गच्चा खा गया। एक तो मालिक इतने कुशल और मेहनती कारीगर को छोड़ना नहीं चाह रहा था वहीं उसी की फैक्ट्री के पास जगदीश का खुद का धंधा शुरू करने की बात ने तो तो जगदीश को मालिक के "खास" की जगह "खास शत्रु" बना दिया। पहले तो मालिक ने जगदीश को समझाया, कुछ लालच दिया। परन्तु जब जगदीश न माना तो उसे दूसरे तरीकों से धमकाने की कोशिश की गयी। वह जानता था कि जगदीश के पास ही दुकान खोलने पर उसका धंधा तो चौपट न होगा पर मुनाफा जरूर घट जायेगा। मालिक ने साफ-साफ कहा—फिर सोच लो! मेरे हाथ बड़े लम्बे हैं। और सचमुच मालिक के हाथ बड़े लम्बे निकले तभी तो अपनी दुकान के उद्घाटन के तीन घण्टे पहले वह दिल्ली से सीधे पूना पहुँचा दिया गया। चूँकि घर वालों को जगदीश तथा मालिक के बीच की रंजिश का पता था इसलिए जगदीश के घर वालों ने मालिक पर जगदीश को अगवा करने का आरोप लगाया। और जब मामला तूल पकड़ने लगा तो बड़े षड्यन्त्रकारी ढंग से मालिक और पुलिस जगदीश को लाने हवाई जहाज से पूना गये। और जब उसे हवाई जहाज से दिल्ली लाने लगे तो जगदीश ने सोचा न होगा कि हवाई जहाज के सफर का सौभाग्य इस स्थिति में प्राप्त होगा। पर इस सफर के बाद वह घर नहीं पहुँचा। सीधा लॉक-अप पहुँचा दिया गया। जगदीश के घर वाले जब उसे लेने रात के 10 बजे पहुँचे तो घर वालों को यह कहकर वापस लौटा दिया गया कि कुछ जरूरी पूछताछ करनी है। घर वालों को यह बात समझ न आयी कि पुलिस उसके साथ क्या पूछताछ करना चाहती है जबकि मालिक जिससे पूछताछ करनी चाहिए थी वह थोड़ी देर पहले घर गया था।

अभी रात के चार बजे थे। सड़क सुनसान थी। चौकी के आसपास काफी सन्नाटा था कि खड़खड़ाहट की आवाज सुनकर जगदीश की आँखें खुल गयी। उससे दूसरे कमरे में चलने को कहा गया। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि आखिर हो क्या रहा है? पुलिस वालों की चुप्पी और बल्ब की रोशनी में फर्श पर बनते काले-काले सायो ने उसके दिल को किसी घोर अनिष्ट की आशंका ने घेर लिया। वह चीखना चाह रहा था। पुलिस ने उसे दूसरे कमरे में खम्भे से बाँध दिया। बाँधते समय जगदीश ने थोड़ा प्रतिरोध किया। और इससे पहले कि उसका प्रतिरोध सशक्त होकर चीखों में बदलता 440 वोल्ट का करंट उसके शरीर में मौत की काली परछाई की तरह दौड़ गया। पर यह परछाई न थी साक्षात मौत थी जिसने अपना काम कुछ मिनटों में पूरा कर दिया। जगदीश का बेजान सर लटक गया। इधर जब पुलिस इस मामले को आत्महत्या का मामला बनाने की तैयारी कर रही थी तो जगदीश का मालिक रात की थकान पूरी कर जग चुका था। और सुबह की ताजी हवा खाने के लिए निकलने की तैयारी कर रहा था।

जगदीश अपने पीछे पत्नी, दो बच्चे और बूढ़ी माँ छोड़ गया जिनका अब कोई सहारा नहीं रह गया था। मालिक पर सवार मुनाफे की राक्षसी हवस पुलिस को उसका हिस्सा देकर एक और मजदूर का खून पी चुकी थी।

स्तालिन जन्म-दिवस 21 दिसम्बर 1879.

स्तालिन का नाम एक शताब्दी बाद भी पश्चिम की नींद हराम कर रहा है

सुरेन्द्र कुमार

स्तालिन का जन्म 1879 में हुआ था और देहान्त 1953 में। परन्तु उनका नाम पश्चिम के साम्राज्यवाद-पूँजीवाद-नवउपनिवेशवाद की नींद इतना लम्बा अर्सा बीत जाने के बाद भी हराम कर रहा है। परोपजीवी पश्चिमी विश्व को, जाहिर है, पता है कि उसके समस्त कुचक्रों को यदि कोई विध्वस्त कर सकता है तो वह शक्ति मात्र लेनिन-स्तालिन-माओ का दर्शन है। विशेष रूप में स्तालिन, क्योंकि वह शत्रु को साम-दाम-दण्ड-भेद यानी समस्त साधनों से दण्डित करने में सक्षम थे। शत्रु शिविर में उनका-नाम, उपस्थिति तथा अनुपस्थिति सदैव कंपकंपी पैदा किया करती थी। और वह कंपकंपी आज भी बरकरार है वरना तथाकथित अंग्रेज जीवनीकार सिमोन सेबाग को स्तालिन युग के पटाक्षेप के पाँच दशक से अधिक समय बीतने के बाद भी "स्तालिन : द कोर्ट ऑफ रेड जार" (स्तालिन : लाल जार का दरबार), जैसी सड़ांधभरी पुस्तक लिख मारने की जरूरत न पड़ती और अमरीकी पूँजी के भोंपू "टाइम" पत्रिका को उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने का मौका न मिलता (जुलाई 7, 2004 का अंक)। इस गंदगीभरी नाली से चुने हुए कुछ निम्न अंश इस सदी के मानव-भक्षी अमरीकी सरमाया की आतंकित मानसिकता पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त होंगे :

"स्तालिन – आततायी, आदिमकालीन गँवार,... उत्कइन राज्य में अकाल का जन्मदाता, जिसने कोई 1 करोड़ की जानें लीं..."

"स्तालिन इतना पी जाता था कि लोगों पर टमाटर फेंकने लगता..."

"बोल्शेविक ठगों... बोल्शेविक गिरोह और स्तालिन..."

पूरी पुस्तक ऐसी ही गंदगी से भरी पड़ी है। कम्युनिज्म के प्रति अथाह परन्तु पुंसत्वहीन आक्रोश व्यक्त करने के लिए स्तालिन को निरन्तर निशाना बनाया जाता रहा है। यह पूँजी का दुर्भाग्य है कि वह कम्युनिज्म और स्तालिन दोनों से अपना पीछा नहीं छुड़ा पाती। अपने मन की भड़ास उंडेलने के लिए पूँजी के निकृष्टतम दासों की वार्ता का एक और उदाहरण उल्लेखनीय है जो अमरीकी "कांग्रेस की अमरीकी विरोधी समिति" में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त गुँजायमान हुई थी। ये रहे कुछ अंश :

समिति का अध्यक्ष : "क्या यह सच है कि रूस में लोग मानव-शवों का भोजन करते हैं?"

गवाह (रूस में भूतपूर्व अमरीकी राजदूत) : "मैंने एक शिशु का अस्थि-पिंजर देखा, जिसके मांस को उसके माँ-बाप खा चुके थे।"...

यह रहा एक अन्य उदाहरण : "जहरभरा रूस, प्लेग का कीटाणु वाहक रूस... स्त्रियों का शील हरण करने वाले रूसी सैनिक, बच्चों के अपहर्ता, किसानों को जर्मीदारों के और मेहनतकशों को अपने मालिकों के खिलाफ भड़काने वाले बोल्शेविक..." (ईवनिंग न्यूज, लन्दन, 28 जनवरी, 1920)। इस प्रलाप का केन्द्रबिन्दु स्तालिन को बनाया गया और यह खेल अनवरत चल रहा है।

क्यों? इसके विचारधारात्मक पहलू की जगह केवल यह देख लेना पर्याप्त होगा कि स्तालिन ने पग-पग पर वर्ग-शत्रुओं की चालों-कुचक्रों को "पैरों तले रौंदने" में कभी कोई रियायत नहीं बरती। तत्क्षण सफल बनाया। द्वितीय विश्व-युद्ध का एक उदाहरण इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। आम तौर पर लिबरल माने जाने वाले तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने रूस को एक सौ बमवर्षक विमानों की यूनिट उसके सुदूरपूर्ववर्ती क्षेत्र में तैनात करने की पेशकश की और इसके लिए शर्त यह रखी कि विमानों के पायलट अमरीकी होंगे, अमरीकियों को रूस के सम्बन्धित भू-भाग का निरीक्षण करने की सुविधा दी जायेगी, आदि, आदि ख़्तालिन को रुजवेल्ट के दो पत्र दिनांक 30 दिसम्बर, 1942, 8 जनवरी, 1943,।

स्तालिन ने अमरीकी इरादों को भाँपने में देर नहीं लगायी और उत्तर में रुजवेल्ट को इस बात की याद दिलायी कि (क)"रूस के सुदूरपूर्व में कोई लड़ाई नहीं चल रही है", (ख) "महासंग्राम तो पश्चिम में जर्मनी के साथ हो रहा है, अतः विमान उस क्षेत्र के लिए अपेक्षित हैं", (ग) "रूस को अमरीकी पायलटों की जरूरत नहीं है, उसके पास खुद अपने ही पायलट जरूरत से ज्यादा हैं", (घ) "रूस अपने क्षेत्र का निरीक्षण स्वयं उसी तरह कर सकता है, जिस तरह अमरीका अपने भू-भाग का" (रूजवेल्ट के पत्रों का स्तालिन द्वारा उत्तर, दिनांक 5 जनवरी, 1943 और 13 जनवरी, 1943)।

(उपरोक्त पत्राचार के अंश सोवियत विदेश मंत्रालय के 1957 में प्रकाशित "दस्तावेज" से लिए गये हैं—लेखक)

पायलट समेत सौ विमान देकर सोवियत संघ के सुदूरपूर्व में सीधे घुसपैठ करना, जहाँ कोई युद्ध ही नहीं हो रहा था—यह अमरीकी मन्सूबा पूरा नहीं हो सका, परन्तु इससे अमरीका की नीयत का अच्छी तरह पता चल जाता है।

चन्द शब्दों में विपक्षी को उसकी औकात बता देना और शत्रु के दुस्साहस पर ठीक समय पर पानी फेर देना, यह स्तालिन का नैसर्गिक गुण था।

और स्मरण रहे, जब ब्रिटिश प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल ने, जिसे भारत के दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी नेता सरदार पटेल तक ने "सबसे निर्लज्ज साम्राज्यवादी" करार दिया था, अमरीकी नगर फुल्टन में 5 मार्च 1946 को सोवियत संघ के विरुद्ध शीतयुद्ध का नगाड़ा बजाया था, तो स्तालिन ने तुरन्त संसारभर में प्रकाशित एक प्रेस-भेंट वार्ता में 1918-21 में 14 पश्चिमी देशों की आक्रमणकारी सेनाओं को नवजात कम्युनिस्ट रूस के सैनिकों द्वारा बुरी तरह परास्त किये जाने की याद दिलायी।

स्तालिन स्तालिन थे, पश्चिम के पूँजीवादी दस्यु और उनके चाकर कितनी भी गंदगी उछालें, स्तालिन के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर तनिक भी आँच आने वाली नहीं। 21 दिसम्बर, 1879 का दिन पूरी प्रगतिशील मानवता के लिए पुनीत पर्व है।

1 दिसम्बर, 2005

"दस्तावेज इंतजार कर सकते हैं, भूख इंतजार नहीं कर सकती!"

भारत आजाद होने के कुछ ही समय बाद घोर अन्न संकट की गिरफ्त में आ गया था। उसने अमरीका और रूस दोनों से जल्दी से जल्दी अनाज भेजने का अनुरोध किया। वाशिंगटन के सौदागर-सूदखोर अनाज की कीमत और उसकी अदायगी की शर्तों पर सौदेबाजी करते रहे। उधर जब यही अनुरोध क्रेमलिन के पास पहुँचा, तो स्तालिन ने अन्यत्र भेजे जा रहे अनाज के जहाज भारत की ओर मोड़ने का निर्देश दिया। इस पर क्रेमलिन के एक उच्चाधिकारी ने स्तालिन से कहा : "अभी इस मसले पर समझौता और दस्तावेजों पर हस्ताक्षर होने हैं।"

इस पर स्तालिन ने कहा : "दस्तावेज-समझौते इन्तजार कर सकते हैं, भूख इन्तजार नहीं करती।"

(गत शताब्दी में 50 के दशक के एक उच्चपदस्थ भारतीय राजनयिक पी. रत्नम ने उक्त वार्ता की चर्चा मास्को में अपने दूतावास में एकत्र भारतीयों के समक्ष की।)

स्तालिन ने नया इतिहास रचा

'नेता आते जाते रहते हैं। लेकिन जनता हमेशा बनी रहती है। जनता ही अमर होती है।'

ये स्तालिन के शब्द थे जो उन्होंने अक्तूबर 1937 में सोवियत संघ के इस्पात मजदूरों को संबोधित करते हुए कहे थे। 1953 की फरवरी के उत्तरार्ध में स्तालिन जा चुके थे। लेकिन जनता अभी भी थी। इतिहास में स्तालिन का स्थान तय करना अब जनता के हाथों में था।

मास्को में महिलाएँ अपनी भरी आँखें लिए गिरती बर्फ के बीच लाउड-स्पीकरों के इर्द-गिर्द खड़ी थीं। एक गृहिणी के इन शब्दों को एसोसिएटेड प्रेस (एप्रे) ने अपने तार से भेजा था :

क्या कोई स्तेपी के घास के मैदानों की कल्पना उनके व्यापक विस्तार के बगैर कर सकता है?

क्या वोल्गा की कल्पना बिना पानी के हो सकती है?

क्या स्तालिन के बगैर रूस की कल्पना की जा सकती है?

एप्रे के संवाददाता ने यह खबर अपनी कार में सुनी और उसके ड्राइवर के गालों पर आँसुओं की धारा उमड़ पड़ी थी। वह बोला : 'माफ कीजिएगा। वे वही पुरुष थे जिन्होंने मास्को की रक्षा के युद्ध का संचालन मोर्चे के पास की एक झोंपड़ी से किया था।' कुछ समय बाद खबर आई कि पूरब के एक बंदी शिविर में कैदियों ने खुशियों का इजहार किया। वे बोले कि इस 'बूढ़े आदमी' की मौत के बाद उनका जेल से छूटना आसान हो जाएगा। स्तालिन ने खुद को रूस के संपूर्ण जीवन में बसा रखा था। लगभग तीस वर्षों तक वे रूस की तमाम सफलताओं और बुराइयों के अभिन्न अंग बने रहे थे।

दुनिया में चारों ओर विभिन्न देशों और व्यक्तियों ने जल्दी-जल्दी अपने विचार प्रकट करके खुद को विभिन्न श्रेणियों में खड़ा कर दिया। पेकिंग के अखबार काले रंग की मोटी सीमा-रेखाओं से घिरे हुए थे। फ्रांस में रक्षा मंत्रालय के आदेश पर सारे झण्डे आधे झुका दिए गए थे। वहाँ की राष्ट्रीय संसद ने खड़े होकर श्रद्धांजलि दी जिसके बीच हेरियो ने जोर देकर 'उस नेता को' सलामी दी 'जिसने फ्रांस को नाजियों से मुक्त कराने में हिस्सा लिया था।' वाल स्ट्रीट (अमरीका) में शेयर बाजार एक अरब डालर लुढ़क गया। दीगर बात है कि दो दिन बाद यह सम्भल भी गया।

हैरी ट्रूमैन ने कहा कि 'अपने किसी भी परिचित की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे दुख होता है।' इस तरह ट्रूमैन ने इतिहास के लिए अपना एक खास चित्र सुरक्षित करा लिया। ज्यादातर अमरीकी टिप्पणियाँ तो इससे भी कम शिष्ट थीं। लास एंजेल्स टाइम्स ने अपनी पवित्र टिप्पणी में कहा : 'नरक जाने के लिए स्तालिन के टिकट पर मुहर लग गई है। हमारी सबसे अच्छी आशा यही हो सकती है कि रूस में उत्तराधिकार के लिए गृहयुद्ध हो जाए।' राष्ट्रपति आइजनहावर ने इस निर्मम अभिलाषा को पूरा करने के लिए आगे के कदम भी उठाए। अमरीकी प्रशासन ने औपचारिक रूप से शोक प्रकट किया। इस शोक सन्देश के शीर्षकों में 'सिर्फ औपचारिक' पर जोर दिया गया था। इसके तुरंत बाद अमरीकी प्रशासन ने घोषणा की कि 'सोवियत संघ के हालात का फायदा उठाने के लिए आक्रामक प्रयासों की तैयारी की जाए। प्रचार के सारे हथकण्डों का इस्तेमाल करके रूस में कलह बढ़ाई जाए और उसके साथी देशों को तोड़कर अलग किया जाए।' सारी कम्युनिस्ट दुनिया में इस शोक के अवसर पर पाँच मिनट का मौन रखा गया। कोरिया में स्थित अमरीकी सेनाओं ने इस समय का इस्तेमाल करके 'गोलीबारी की भारी बौछार की।'

अमरीका की प्रतिक्रिया से पश्चिमी यूरोप चकित रह गया। यूरोप वालों की राजनीति चाहे कुछ भी रही हो पर वे अपने नेता के निधन पर शोक में डूबी एक महान जनता की शोक संवेदना का सम्मान करते थे। यह वह नेता था जिसने नाजियों के ऊपर पूरे यूरोप की साझी विजय को सम्भव बनाने में दूसरे तमाम नेताओं से कहीं ज्यादा भूमिका निभाई थी। अमरीका के इस रवैये को देखकर बरबस ही मास्को द्वारा फ्रैंकलिन डिलेनो रूजवेल्ट के निधन के समय अपनाए गए इसके ठीक उलटे रवैये की याद आई। वह खबर पाते ही मोलोतोव रात को दो बजे अमरीकी दूतावास जा पहुँचे थे और उन्होंने अमरीकी राजदूत वाल्टर बेडेल स्मिथ को अपने गहरे दुख के इजहार से हतप्रभ कर दिया था। होटलों में काम करने वाले बैरे तक अमरीकी ग्राहकों की सेवा करते हुए अपनी शोक संवेदना प्रकट कर रहे थे। सब लोग उस आदमी के निधन पर शोकग्रस्त थे जिसने स्तालिन के साथ मिलकर स्थायी विश्व शांति का सपना देखा था। स्तालिन की मृत्यु ने अमरीका को यह मौका दिया था कि वह शिष्टता का प्रदर्शन करते हुए पुराने घावों को भरने की कोशिश करे। लेकिन वाशिंगटन का रवैया द्वेषपूर्ण ही बना रहा।

लेकिन स्तालिन की मृत्यु पर शोकग्रस्त होने वाले और उन्हें अपमानित करने वाले तबकों में इस बात पर सहमति थी कि स्तालिन बहुत महत्वपूर्ण थे। लास एंजेल्स टाइम्स तक को भी यह जरूरी लगा कि वह कई दिनों तक स्तालिन की बीमारी और मृत्यु सम्बन्धी विस्तृत खबरों के लिए रोजाना पाँच पृष्ठों की सामग्री प्रकाशित करता रहे। 1924 में वे स्तालिन के लिए पाँच पंक्तियाँ भी नहीं देने वाले थे। मैं यह जानती हूँ क्योंकि मैंने अप्रैल 1924 में 'हर्स्ट की अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका' के लिए अमरीका में स्तालिन के बारे में प्रकाशित होने वाला पहला लेख लिखा था। मैंने लिखा था : 'स्तालिन के पास कोई सरकारी पद नहीं है। लेकिन अगर लेनिन का कोई उत्तराधिकारी है तो वे स्तालिन ही होंगे।' मुझे यह बात रूसी कम्युनिस्टों ने बताई थी। मेरे ये शब्द तो अमरीका के किसी कुएँ में डूब गए थे। किसी ने इन पर ध्यान नहीं दिया था। लेकिन अब उसके उन्तीस वर्ष बाद हावर्ड के स्मिथ ने यूरोप में कहा :

'इस शताब्दी के पहले आधे हिस्से में अगर किसी आदमी ने दुनिया को बदलने के लिए सबसे ज्यादा काम किया था तो वे स्तालिन ही थे।'

ये शब्द स्तालिन के विश्वव्यापी समाधि-लेख बने रहेंगे। उन्होंने रूस को एक महान शक्ति बनाया था। उसे दुनिया का पहला समाजवादी देश बनाया था। इस प्रकार उन्होंने एशिया में और खासतौर से चीन में उठते राष्ट्रीय आन्दोलनों और पश्चिमी देशों में 'कल्याणकारी राज्य' के लिए उठते आन्दोलनों को भी तेज होने और उन्हें एक आकार ग्रहण करने में मदद की। एन.के. स्मिथ ने लिखा है कि 'स्तालिन ने मजदूरों के प्रति पश्चिम का सारा रवैया ही बदल डाला।' उस जमाने में अमरीका की 'न्यू डील' और ब्रिटेन के 'कल्याणकारी राज्य' जैसे सरकारी नियोजन से सम्बन्धित सारे विचार वास्तव में रूस की पंचवर्षीय योजनाओं की प्रतियोगिता में और 1929 के विश्व आर्थिक संकट को क्रांतियों का जनक बनने से रोकने के प्रयास स्वरूप ही पैदा हुए थे।

इस तरह सारे ही देशों में स्तालिन ने नया इतिहास रचा। चाहे ये देश स्तालिन के पक्षधर हों या विपक्षी।

(प्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार अन्ना लुई स्ट्रांग की किताब 'स्तालिन युग' के अंश)

माओ त्से-तुङ के जन्मदिवस (25 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ की कविताएँ

माओ त्से-तुङ अपने केन्द्रीय और सर्वोपरि रूप में एक क्रान्तिकारी दार्शनिक, सर्वहारा क्रान्ति के सिद्धान्तकार और चीनी क्रान्ति के राजनीतिक नेता थे। कवि-कर्म उनकी सक्रियता का केन्द्रीय दायरा नहीं था, लेकिन कवि माओ राजनीतिक चिन्तक माओ के साथ-साथ आद्यन्त मौजूद रहे–राजनीति और कविता दोनों को सतत ऊर्ध्वमुखी बनाते हुए।

कवि-कर्म या किसी भी कोटि का सांस्कृतिक कर्म माओ ने स्वतंत्र रूप से कभी नहीं किया। वे क्रान्तिकारी संघर्ष में जूझते हुए और नेतृत्वकारी भूमिका निभाते हुए, उसके विभिन्न चढ़ावों-उतारों से गुजरते हुए अपने 'इम्प्रेशन्स' को, भावानुभूतियों को, भाव-छवियों को, भावोद्रेकों को एक सहज स्वाभाविक इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में कविताओं में बाँधते रहे, जो उस युग की, चीनी जन की, चीनी इतिहास की, चीनी क्रान्ति की और दुनिया भर की मुक्तिकामी जनता के आशावाद की प्रातिनिधिक अभिव्यक्ति बन गये। *माओ की कविताएँ चीनी क्रान्ति की अलग-अलग दौरों के जीवित ऐतिहासिक साक्ष्य और मानवीय दस्तावेज हैं। इनमें क्रान्ति के अलग-अलग दौरों की कठिनाइयों, चुनौतियों और उपलब्धियों की सान्द्र अनुभूतियाँ प्रकट हुई हैं। यह माओ के काव्य-कौशल की सफलता ही थी कि उन्होंने चीन की पार्टी के भीतर चले दो लाइनों के कठिन संघर्षों, ख्रुश्चेवी संशोधनवाद द्वारा उत्पन्न विश्वव्यापी संकट और उसके विरुद्ध कठिन विचारधारात्मक संघर्ष और चीनी पार्टी के भीतर मौजूद पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध संघर्ष को भी अपनी कविताओं का विषय बनाया या पृष्ठभूमि के रूप में उन्हें सन्दर्भित किया।* हाँ, यह जरूर है कि इन संघर्षों के इतिहास से एक हद तक परिचित व्यक्ति ही इन सन्दर्भों को पकड़ सकता है। इन अर्थों में, माओ की अधिकांश कविताओं के अर्थ दो धरातलों पर खुलते हैं। प्रकृति के भव्य उदात्त चित्रों के माध्यम से मानव जीवन के सौन्दर्य को उभारती सर्वहारा सौन्दर्य-दृष्टि, अलगाव के निषेध, जिजीविषा और सर्वहारा आशावाद की अभिव्यक्ति के रूप में उनका एक सामान्य अर्थ एक आम पाठक के सामने खुलता है; तो चीनी क्रान्ति के अलग-अलग दौरों के ऐतिहासिक मानवीय साक्ष्य के रूप में एक और गहरा, विशिष्ट अर्थ इतिहास से परिचित पाठकों के समक्ष खुलता है।

संघर्ष के बेहद कठिन दौरों से गुजरते हुए या नये कार्यभारों-चुनौतियों के समक्ष चिन्तातुर खड़े होते समय माओ अपनी कविताओं में प्रायः अतीत के विभिन्न दौरों के संघर्षों, घटनाओं को याद करते हैं, उनसे प्रेरणा लेते हैं और अपने वर्तमान के कार्यभारों को पूरा करने की आत्मिक शक्ति अर्जित करते हैं। ऐसा करते हुए माओ संघर्ष के विशिष्ट दौर से गुजरती जनता और क्रान्तिकारियों की मनःस्थिति को ही मुखर करते हैं। अनूदित कविताओं के साथ दी गई संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणियों से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

–सत्यव्रत ('माओ त्से-तुङ का कविकर्म : कुछ फुटकल नोट्स' के अंश)

तैरना[1]

(जून, 1956)

अभी-अभी मैंने पिया है चाङशा का पानी
और आया हूँ अब चखने ऊचाङ की मछली ।
तैर रहा हूँ मैं अब याङत्सी महानदी में
इस पार से उस पार तक,
देखते हुए चू प्रदेश[2] के खुले आकाश में दूर-दूर तक ।
चलें हवाएँ जोरदार और
पछाड़ खायें लहरें, टकराएँ उन्मत्त
अहाते में यूँ ही चहलकदमी करने से तो
बेहतर ही है यहाँ होना
इन लहरों के बीच ।
आज मैं निश्चिन्त हूँ ।
ऐसी ही किसी एक धारा के सन्निकट
कहा था कन्फ्यूशियस ने–
"यूँ चीजें बहती जाती हैं अविरल गति से ।"

हवा के झकोरों से हिलते हैं मस्तूल ।
निश्चल खड़े हैं सर्प और कच्छप पर्वत ।
अमल हो रहा है आज महान योजनाओं पर :
एक पुल[3] उड़ता हुआ-सा हवा में
उत्तर को जोड़ेगा दक्षिण से,
एक गहरी खाई है जहाँ,
वहाँ एक रास्ता होगा
इस पार से उस पार तक;
उधर पश्चिम की ओर बहती प्रतिकूल धारा में
खड़ी होंगी पत्थर की दीवारें
ऊशान पर्वत[4] से आने वाले बादलों
और बारिश को रोकती हुई,
तब तक तंग दर्रों में
तरंगायित होने लगेगी एक चौरस झील
पर्वत की देवी, यदि होगी अभी भी वहाँ,
चकित रह जायेगी
इस कदर बदली हुई दुनिया को देखकर ।

शाओशान की फिर से यात्रा[1]

(जून 1959)

(25 जून 1959 को बत्तीस वर्षों बाद मैं फिर शाओशान गया)

फिर से याद हो आये एक धुँधले स्वप्न की तरह,
मैं कोसता हूँ गुजरे हुए लम्बे समय को–
बत्तीस वर्षों को पीछे छोड़ आयी है
मेरी यह जन्मभूमि इस बीच ।
लाल झण्डे ने जगा दिया भूदासों को,
उठ खड़े हुए वे फरसा लिए हाथों में ।
निरंकुश मालिकों के काले पंजों ने थाम रखे थे कोड़े ।
कठिन कुर्बानियों से ताकत पाते हैं निर्भीक संकल्प,
जो साहसपूर्वक सम्भव बनाते हैं
नये आसमान में सूरज और चाँद का चमकना ।
आह्लादित होकर मैं देखता हूँ
धान और सेम के खेतों में उठती लहरों पर लहरें
और चारों ओर से अपने घरों को लौटते हैं
सूरमागण, शाम की धुन्ध में ।

चिङ्काङ्शान पर फिर से चढ़ते हुए[1]

(मई 1965)

बहुत दिनों से आकांक्षा रही है
बादलों को छूने की
और आज फिर से चढ़ रहा हूँ
चिङ्काङ्शान पर ।
फिर से अपने उसी पुराने ठिकाने को
देखने की गरज़ से
आता हूँ लम्बी दूरी तय करके,
पाता हूँ नये दृश्य पुराने दृश्यों की जगह पर ।

यहाँ-वहाँ गाते हैं ओरिओल,
तीर की तरह उड़ते हैं अबाबील,
सोते मचलते हैं
और सड़क जाती है ऊपर आसमान की ओर ।
एक बार पार हो जाये हुआङ्ऊयाङ्चिएह
फिर नहीं नजर आती और कोई जगह खतरनाक ।

मथ रही है हवाएँ और बिजलियाँ
लहरा रहे हैं झण्डे और बैनर
जहाँ कहीं भी रहता है इंसान ।

चुटकी बजाते उड़ गये अड़तीस साल ।
भींच सकते हैं हम चाँद को नवें आसमान में
और पकड़ सकते हैं कछुए
पाँच महासमुद्रों की गहराइयों में :
विजयोल्लास भरे गीतों और हँसी के बीच
हम लौटेंगे ।

साहस हो यदि ऊँचाइयों को नापने का,
कुछ भी नहीं है असम्भव इस दुनिया में ।

कविताओं पर परिचयात्मक टिप्पणियाँ

तैरना

1. यह कविता क्रान्तिकारी चीन के इतिहास के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संक्रमण-काल (1955-56) की स्पिरिट को, उसकी चुनौतियों को और उस दौरान विभिन्न धरातलों पर जारी वर्ग संघर्ष में जूझने की सर्वहारा युयुत्सा को स्वर देती है तथा साथ ही भविष्य के प्रति अमिट आशावाद और स्वप्नदर्शी कल्पनाशीलता को भी।

नई जनवादी क्रान्ति के बाद समाजवादी क्रान्ति एवं निर्माण के काम को 1955 में एक नया संवेग मिला। स्वयं माओ के ही शब्दों में, *"चीन में 1955 का साल समाजवाद और पूँजीवाद के बीच के संघर्ष में फैसले का साल था।"* 1953 में पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत होने के बाद गाँवों में 'पारस्परिक सहायता टीमों' से 'अर्द्धसमाजवादी' कृषि-उत्पादक सहकारी फार्मों में रूपान्तरण का काम शुरू हो चुका था। 'अर्द्धसमाजवादी' इन अर्थों में कि इन सहकारी फार्मों की आय का बँटवारा अंशतः सदस्यों के श्रम के आधर पर और अंशतः उनके द्वारा लगाई गई पूँजी और जमीन के हिसाब से होता था। जुलाई 1955 तक चीन के किसान परिवारों में से सिर्फ पन्द्रह प्रतिशत ही ऐसे सहकारी उपक्रमों में संगठित हो सके थे। 31 जुलाई, 1955 को माओ ने सामूहिकीकरण की रफ्तार तेज करने का जो आह्वान किया उसके चलते इस प्रक्रिया ने चमत्कारी रफ्तार पकड़ ली। 1956 तक चीन में कृषि, दस्तकारी, बड़े उद्योगों और वाणिज्य के क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की मिल्कियत के समाजवादी रूपान्तरण का काम मुख्य तौर से पूरा हो चुका था। 1956 आते-आते अब माओ का मुख्य जोर इस बात पर था कि सहकारिता के प्रबन्धन में उच्च मध्यम किसानों की मुख्य भूमिका को गरीब और भूमिहीनों के द्वारा विस्थापित कर दिया जाये तथा कृषि फार्मों की आय का वितरण सदस्यों में सिर्फ उनके द्वारा किये गये श्रम के हिसाब से हो। यह प्रक्रिया भी तेज गति से आगे बढ़ी और वह पृष्ठभूमि तैयार हो गई जिसके आधार पर चीन की किसान आबादी तीन वर्षों बाद कम्यून बनाने के महान साहसिक प्रयोग में उतर सकी। 1955-56 के जाड़े के दौरान ही माओ ने उद्योगों के समाजवादी आधार पर निर्माण के क्षेत्र में भी **'एक अग्रवर्ती छलाँग'** का आह्वान किया था, जो दो वर्षों बाद शुरू होने वाली **'महान अग्रवर्ती छलाँग'** (ग्रेट लीप फॉरवर्ड) की पूर्वपीठिका तैयार करने का ही एक हिस्सा था। सोवियत प्रयोग से अलग, इस दौर में माओ ने इस बात पर जोर दिया कि उद्योग का समाजवादी रूपान्तरण एवं विकास कृषि की कीमत पर नहीं बल्कि उसके साथ-साथ होना चाहिए, वरना समाजवादी समाज में वर्ग विभेद का नया आधार तैयार होने लगेगा।

1956 में ही माओ ने समाजवादी क्रान्ति की वैकल्पिक रणनीति प्रस्तुत करने की शुरुआत *'दस मुख्य सम्बन्धों के बारे में'* शीर्षक प्रसिद्ध लेख लिखकर की। इस समय तक वे स्पष्टतः इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि निजी स्वामित्व के समाजवादी रूपान्तरण का काम पूरा हो जाने के बाद भी समाज में वर्ग-अन्तरविरोध मौजूद रहते हैं और वर्ग संघर्ष ही समाजवाद की कुंजीभूत कड़ी होता है। इसके विपरीत ल्यू शाओ-ची आदि की रहनुमाई में पार्टी के भीतर ही एक दूसरा धड़ा भी मौजूद था जो *'उत्पादक शक्तियों के विकास'* के सिद्धान्त का प्रवर्तन करते हुए वर्ग संघर्ष को खारिज कर रहा था।

विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन में भी स्तालिन की मृत्यु के बाद ख्रुश्चेव के नेतृत्व में तेजी से उभर रहा संशोधनवाद चीनी क्रान्ति के समक्ष बाहर से गंभीर समस्याएँ उत्पन्न करने के साथ ही चीनी पार्टी के भीतर जारी दो लाइनों के संघर्ष में भी संशोधनवादी लाइन को बल प्रदान कर रहा था। बीसवीं कांग्रेस में अपनी कुख्यात गुप्त रिपोर्ट में स्तालिन पर हमले की आड़ लेकर ख्रुश्चेव वस्तुतः समाजवाद पर हमले की शुरुआत कर चुका था। अप्रैल, 1956 में *'सर्वहारा अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभव के बारे में'* नामक सम्पादकीय टिप्पणी लिखकर चीनी पार्टी ने जवाबी कार्रवाई भी शुरू कर दी थी। उधर विश्व स्तर पर शीतयुद्ध का घटाटोप सघनतम था। अमेरिकी साम्राज्यवाद चतुर्दिक आक्रामक था। हंगरी में प्रतिक्रान्तिकारी उभार भी इसी वर्ष हुआ था।

अभूतपूर्व संकट के इसी दौर में माओ ने *'सौ फूलों को खिलने दो और हजारों विचारों को एक दूसरे से टकराने दो'* का नारा देकर आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र के साथ ही विचारधारात्मक राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वर्ग संघर्ष के उस नये उन्नत चरण का सूत्रपात कर दिया था जो आगे **'महान अग्रवर्ती छलाँग'** के रूप में अपने शिखर पर जा पहुंचा था।

'तैरना' कविता इस कठिन दौर में सर्वहारा शौर्य, आशावाद और भविष्य के प्रति अडिग विश्वास को प्रकट करती है। याङ्त्सी महानदी को तैर कर पार करने का बिम्ब मानो उक्त कठिन दौर के वर्ग संघर्ष से जूझने और धारा के विरुद्ध तैरने का सूचक है। कवि का खुले आकाश में दूर-दूर तक देखना क्रान्तिकारी कल्पनाशीलता और दूर-दृष्टि का परिचायक है। तूफानी हवाओं और लहरों का आह्वान वर्ग संघर्ष का आह्वान है और इन लहरों के बीच निश्चिन्त होना बीहड़ संघर्षों में जीने की क्रान्तिकारी आदत की अभिव्यक्ति है। *"यूं चीजें बहती जाती हैं अविरल गति से"* यह इतिहास की सतत् परिवर्तनशीलता के प्रति विज्ञान-सम्मत आस्था को स्वर देता है।

कवि तूफानों में अविचल अडिग पर्वतों के रूप में क्रान्तिकारी जनता और कम्युनिस्ट पार्टी को देखता है। *"पश्चिम की ओर बहती प्रतिकूल धारा"* में दोहरे अर्थ संकेत हैं जो चीनी पार्टी के भीतर के संशोधनवादियों की ओर भी इंगित करते हैं और पश्चिम के समक्ष घुटने टेकने की ओर आतुर ख्रुश्चेव की ओर भी। इस प्रतिकूल धारा में खड़ी पत्थर की दीवार के रूप में चीन के क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी को देखा गया है।

कविता का मूल भाव यह है कि इन तमाम प्रतिकूल स्थितियों में भी चीन में युगान्तरकारी समाजवादी रूपान्तरण का काम निर्बाध रूप से जारी रहेगा।

2. युद्धरत राज्य काल का एक राज्य, जिसका क्षेत्र मुख्य रूप से आज के हुपे और हुनान प्रान्तों में फैला हुआ है।

3. यहाँ ऊहान के याङ्त्सी पुल का उल्लेख है, जो उन दिनों निर्माणाधीन था।

4. सेचुआन प्रान्त की ऊशान काउंटी के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक पर्वत, जिसकी चोटी का नाम देवी शिखर है। एक पौराणिक कहानी के अनुसार, मेघ और वर्षा की देवी यहीं निवास करती है।

शाओशान की फिर यात्रा

1. 1959 की गर्मियों में माओ बत्तीस वर्षों बाद अपने जन्मस्थान शाओशान गाँव गये जो हुनान प्रान्त की सियाङ्तान काउण्टी में स्थित है। 1927 में माओ तब वहाँ गये थे जब कि वे हुनान प्रान्त में किसान आन्दोलन संगठित करते हुए भूमि क्रान्ति का अपना पहला प्रयोग कर रहे थे और जब उन्होंने हुनान किसान आन्दोलन की जाँच-पड़ताल सम्बन्धी अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट तैयार की थी।

बत्तीस वर्षों बाद माओ जब शाओशान पहुँचे तो वह राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय—दोनों ही धरातलों पर उठ खड़े होने वाले विकट संघर्षों की पूर्वबेला थी। ख्रुश्चेव सोवियत संघ में तख्तापलट कर चुका था और उसके आधुनिक संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष तेज होता जा रहा था। पहले से ही अमेरिकी साम्राज्यवादी घेरेबन्दी का शिकार चीन ख्रुश्चेव द्वारा बाँह मरोड़ने और ब्लैकमेल करने के कारण गम्भीर संकट का सामना कर रहा था। इधर देश में पार्टी के भीतर दक्षिणपंथियों के विरुद्ध विकट संघर्ष जारी था। यहाँ तक कि पार्टी की आठवीं कांग्रेस में तो शक्तिसन्तुलन लगभग उनके पक्ष में हो गया था।

समाजवाद को आगे ले जाने के कठिन संघर्ष की राह निकालने और उसके लिए कमर कसने के दौर में माओ शाओशान पहुँचे थे जो चीनी क्रान्ति के दीर्घकालिक संघर्ष के पहले निर्णायक मुकाम का साक्षी रहा था। वर्तमान चुनौतियों का सामना करने के लिए आत्मविश्वास और संकल्प के स्रोत के रूप में अतीत को याद करते माओ ने यह कविता लिखी जिसमें जनता के निर्भीक संकल्पों, शौर्य एवं कुर्बानियों से सम्भव क्रान्ति द्वारा सृजित नये यथार्थ का चित्र उपस्थित किया गया है। अन्तर्निहित भाव यह है कि पुनः वही जनता—वही सूरमागण नये संघर्ष के लिए कमर कसेंगे और क्रान्ति के नये शत्रुओं को भी पराजित करेंगे।

चिङ्काङ्शान पर फिर से चढ़ते हुए

1. माओ ने यह सुप्रसिद्ध कविता उस समय लिखी थी जब चीन में पार्टी के भीतर मौजूद पूँजीवादी पथगामियों (दक्षिणपंथियों को यह संज्ञा उसी समय दी गई थी) के विरुद्ध एक प्रचण्ड क्रान्ति के विस्फोट की पूर्वपीठिका तैयार हो रही थी। महान समाजवादी शिक्षा आन्दोलन के रूप में संघर्ष स्पष्ट हो चुका था। युद्ध की रेखा खिंच गई थी। यह 1966 में शुरू हुई महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की पूर्वबेला थी जिसने पूँजीवादी पथगामियों के बुर्जुआ हेडक्वार्टरों पर खुले हमले का ऐलान किया था। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने पहली बार सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत सतत क्रान्ति और अधिरचना में क्रान्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और इसे पूँजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने का एकमात्र उपाय बताते हुए समाजवाद संक्रमण की दीर्घावधि के लिए एक आम कार्यदिशा दी। इसके सैद्धान्तिक सूत्रीकरणों की प्रस्तुति 1964-65 में ही की जाने लगी थी।

इस कविता में भावी युगान्तरकारी क्रान्ति की पदचापें स्पष्टतः ध्वनित होती हैं। चिङ्काङ्शान में पहली बार देहाती आधार इलाकों का निर्माण हुआ था, भूमि क्रान्ति के प्राथमिक प्रयोग हुए थे, लाल सेना का जन्म हुआ था और यहीं से दीर्घकालिक लोकयुद्ध का मार्ग प्रशस्त हुआ था। यह चीनी क्रान्ति का एक प्रतीकचिन्ह था। 1965 में एक नई क्रान्ति के तूफान का आवाहन करते हुए माओ चिङ्काङ्शान पर फिर से चढ़ने का वर्णन करते हुए एक बार फिर उन दिनों को याद करते हैं और उनसे प्रेरणा लेते हैं। चिङ्काङ्शान पर फिर से चढ़ना एक और युगान्तरकारी क्रान्तिकारी संघर्ष की तैयारी का प्रतीक है। इस कविता में सर्वहारा साहस, संकल्प और आशावाद की सान्द्र अभिव्यक्ति सामने आई है।

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2003-05

अभाव–बेकारी और नस्ली अपमान से धधकता जनाक्रोश
फ्रांस की सड़कों पर लावा बनकर बह निकला

(बिगुल संवाददाता)

फ्रांस के उपनगरों में भड़की जनाक्रोश की आग फिलहाल बुझ गयी है लेकिन इसने भविष्य का एक पूर्वसंकेत दे दिया है। आजादी, जनतंत्र और सभ्यता का बाना ओढ़े पश्चिमी साम्राज्यवादी बर्बर राज्यों के अन्तःपुर में भीषण कोहराम मचा हुआ है। दुनिया भर की मेहनतकश जनता के बर्बर शोषण-उत्पीड़न पर टिकी ये पूँजीवादी सभ्यताएँ ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठी हुई हैं और सतह के नीचे धधकता लावा फूट पड़ने के लिए कमजोर मुहाने तलाश रहा है।

जिस घटना से चिंगारी भड़क उठी और देखते देखते उसने दावानल का रूप धारण कर लिया वह तो निमित्त मात्र थी। राजधानी पेरिस के एक उपनगर में अरब-अफ्रीकी मूल के दो किशोर पुलिस की जाँच से बचने के लिए एक बिजलीघर में छुप गये थे जहाँ करण्ट लगने से उनकी मौत हो गयी। स्थानीय युवा और नागरिक इस घटना के विरोध में सड़कों पर उतर आये। इसके बाद फ्रांस के गृहमंत्री निकोलस सरकोज़ी के इस नस्लवादी बयान ने आग में घी का काम किया कि स्थानीय उपनगर में रहने वाले अरब-अफ्रीका मूल के लोग समाज के कचरे हैं। एक दिन बाद एक मस्जिद बम विस्फोट की घटना से नौजवानों का गुस्सा बेकाबू हो गया। वर्षों से फ्रांसीसी समाज में अपनी दोयम दर्जे की स्थिति, सरकार की नस्लवादी-रंगभेदवादी नीतियों, अभाव-बेकारी और अपमान से आक्रोश का जो लावा अन्दर ही अन्दर खदबदा रहा था वह सड़कों पर बह निकला। पेरिस सहित तमाम प्रमुख शहरों और उपनगरों में रहने वाली मुख्यतः गरीब अरब-अफ्रीकी मूल की नौजवान आबादी सड़कों पर उतर आयी। फिर हिंसा, आगजनी और तोड़फोड़ का जो सिलसिला शुरू हुआ वह तीन हफ्तों तक लगातार जारी रहा। नौजवानों ने दो हजार से अधिक कारों, तमाम स्कूली इमारतों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों और सत्ता के तमाम केन्द्रों को आग के हवाले कर दिया। इतना ही नहीं, नौजवानों ने सड़कों पर पुलिस के साथ छापामार ढंग से जबर्दस्त मुठभेड़ें कीं। हजारों की तादाद में तैनात पुलिस बल भी नौजवानों के आक्रोश को काबू में नहीं कर सका। आखिरकार, सरकार को कर्फ्यू लगाना पड़ा और आपातकाल की घोषणा कर पुलिस को तलाशी और सामूहिक गिरफ्तारी करने का बेलगाम अधिकार देना पड़ा। इसके बावजूद नौजवानों का गुस्सा बेकाबू ही रहा। आगजनी व तोड़फोड़ की घटनाओं पर विराम तभी लग सका जब इन उपनगरों में आगजनी के लिए कारें ही नहीं बचीं। तीन सप्ताहों तक फ्रांस का समूचा सत्तातंत्र बेबस, भयाक्रान्त रहा कि कहीं उपनगरों की आग प्रमुख शहरों को अपनी चपेट में न ले ले और पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक पेरिस ही जलकर खाक न हो जाये।

मुख्यतः अरब-अफ्रीकी मूल के नौजवानों के आक्रोश के इस विस्फोट के पीछे पूँजीवादी "स्वर्गों" में मौजूद तलघरों की वह सच्चाई है जिसे बुर्जुआ मीडिया कभी सामने नहीं आने देता है। दुनिया की जनता बुर्जुआ मीडिया के जरिये पेरिस की चमक-दमक, ऐश्वर्य और वैभव के प्रतीकों और पेरिस की रंगीन शामों से ही वाकिफ है। लेकिन पेरिस के मुख्य शहर से कुछ ही किलोमीटर दूर बसे उपनगरों में रहने वाली अरब-अफ्रीकी मूल के लोग, जो फ्रांस के नागरिक हैं, भीषण अभाव, वंचना और अपमान की जिन्दगी जी रहे हैं उसके बारे में लोग शायद अनजान ही बने रहते अगर नौजवानों की यह बगावत फूटी नहीं होती।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1950 और 1960 के दशक में, जब फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था उफान पर थी, सस्ते श्रम की भारी माँग को पूरा करने के लिए भारी संख्या में फ्रांसीसी हुक्मरानों ने अरब-अफ्रीका और पश्चिमी अफ्रीका के अपने भूतपूर्व उपनिवेशों से लोगों को लाकर उपनगरों में बसाया था। उस समय उनके लिए रोजगार की गारण्टी ही नहीं, आवास के साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य नागरिक सुविधाएँ मुहैय्या करायी गयी थीं। इन लोगों के लिए बहुमंजिला आवास बनाकर दिये गये थे। अल्जीरिया, ट्यूनिशिया, मोरक्को, गिनी बिसाऊ, आइवरी कोस्ट आदि देशों से लायी गयी इस गरीब आबादी के लिए उस समय यह नेमतों के समान था। लेकिन डेढ़-दो दशक बाद ही उनके लिए स्थितियाँ बदलने लगीं।

1973 के तेल संकट और उसके फलस्वरूप विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों का असर फ्रांसीसी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। भारी संख्या में कारखानों में तालाबन्दी और छँटनी शुरू हुई। रोजगार की अनिश्चितता पैदा हुई। तमाम आवासीय एवं नागरिक सुविधाओं की सच्चाई भी सामने आनी शुरू हुई कि उनके निर्माण में दोयम दर्जे की सामग्री का इस्तेमाल किया गया है। बढ़ती बेरोजगारी और नागरिक सुविधाओं की बदलहाली ने धीरे-धीरे जो नारकीय जीवन स्थितियाँ पैदा कीं उससे यह आप्रवासी आबादी खुद को छला-ठगा गया महसूस करने लगी। इस बीच एक पीढ़ी जवान हो चुकी थी जो पूरी तरह फ्रांस मे ही जन्मी, पली और बढ़ी थी। पूँजीवादी व्यवस्था के गहराते संकट और श्वेत फ्रांसीसी युवाओं के बीच बढ़ती बेरोजगारी ने नये सिरे से उस नस्लवादी भेदभाव की जमीन भी तैयार कर दी जो आज बढ़ते-बढ़ते वहाँ पहुँच चुका है कि सरकारी मशीनरी और बुर्जुआ राजनीति को भी अपनी चपेट में ले चुकी है।

अरब-अफ्रीकी मूल की इस आबादी की जीवन स्थितियाँ आज कितनी बदतर हो चुकी हैं इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि कोई 60 लाख से अधिक आप्रवासी आबादी में 30 प्रतिशत लोग बेरोजगार हैं। नौजवानों में बेरोजगारी 50 प्रतिशत से भी अधिक पहुँच चुकी है। इसके साथ ही तमाम सरकारी दफ्तरों, पुलिस महकमे और सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में उन्हें कदम-कदम पर नस्लवादी, रंगभेदवादी भेदभाव और अपमान सहन करना पड़ रहा है। 11 सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हुए हमलों के बाद जो माहौल बना है उसमें हर आप्रवासी को आतंकवादी होने के शक में तरह-तरह की अपमानजनक जाँच-पड़तालों से होकर गुजरना पड़ता है। यही वे हालात थे जिससे युवाओं के भीतर आक्रोश का बारूद इकट्ठा होता जा रहा था। दो किशोरों की बिजलीघर दुर्घटना में हुई मौत ने इस बारूद में चिंगारी का काम किया और फिर फ्रांस धू-धूकर जल उठा।

फ्रांस के नौजवानों की इस स्वतःस्फूर्त बगावत ने फ्रांसीसी बुर्जुआ समाज के उस अन्धेरे पहलू को उघाड़कर रख दिया है जिसे बुर्जुआ मीडिया बड़े जतन से ढँककर रखे हुए था। दुनिया के पूँजीवादी 'स्वर्गों' में हर जगह यह अन्धेरा मौजूद है। 1992 में अमेरिका में एक अश्वेत युवक रोडनी किंग की पुलिस द्वारा बर्बर पिटाई से लास एंजेल्स और अन्य कई शहरों में अश्वेत युवाओं ने जो हिंसक बारदातें की थीं वे भी जम्हूरियत के जन्नत की जहन्नुमी हकीकत को ही बयान कर रही थीं। अभी हाल में कैटरीना तूफान के समय भी अमेरिकी हुक्मरानों का रंगभेदवादी अमानवीय कारनामा दुनिया के सामने उजागर हो चुका है।

तीन सप्ताहों तक फ्रांस के आसमान में आग और धुएँ के जो बादल मँड़राते रहे वे लम्बे समय तक फ्रांस ही नहीं दुनिया भर के पूँजीवादी हुक्मरानों को दुःस्वप्न बनकर डराते रहेंगे। और यह भी तय है कि, फ्रांसीसी युवाओं की यह स्वतःस्फूर्त बगावत भविष्य में रंग लायेगी। फ्रांसीसी हुक्मरानों की यह कोशिश रहेगी कि वे समाज में पनप चुकी नस्लवादी दरार को और चौड़ा करते जायें लेकिन उनके मंसूबे हमेशा कामयाब होते रहेंगे यह मानना इतिहास की गति को नजरअन्दाज करना होगा। विश्व पूँजीवाद आज जिन भीषण संकटों की गिरफ्त में है उससे आने वाले दिनों में मेहनतकश जनता की रंग, नस्ल, राष्ट्रीयताओं और अन्य बँटवारों को मिटाकर पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी एकजुटता की जमीन भी तैयार हो रही है। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी विश्वव्यापी बगावतों की भूमिकाएँ तेजी से लिखी जा रही हैं। शुरुआत एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका की कमजोर कड़ियों से ही होगी लेकिन पलीता विकसित पूँजीवादी "स्वर्गों" में भी बिछ चुका है। चिन्गारियाँ उन तक भी पहुँचेंगीं। फ्रांस की राजधानी पेरिस में भी, जहाँ मजदूरों ने अपनी पहली सरकार बनायी थी, मेहनतकश अवाम एक बार फिर जागेगा और 'स्वतंत्रता, समानता, भाईचारे' के उस झण्डे को फिर से हवा में लहराते हुए नयी दुनिया के निर्माण में तीसरी दुनिया के मेहनतकशों के साथ खड़ा होगा, जिसे बुर्जुआ वर्ग ने महान फ्रांसीसी क्रान्ति के बाद धूल में गिरा दिया था।

–योगेश पन्त

श्रम कानूनों में बदलाव के लिए पूँजीपतियों की छटपटाहट

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। यूँ तो उदारीकरण के इस दौर में केन्द्र व राज्य की सरकारें मुनाफाखोरों के हित में एक के बाद एक नीतियाँ कुशलतापूर्वक लागू करती जा रही हैं। वैश्वीकरण का उद्दण्ड घोड़ा सरपट दौड़ने लगा है। लेकिन एक मुद्दे पर सरकारी विलम्ब के कारण देशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके एजेण्टों की छटपटाहट लगातार बढ़ती जा रही है–वह है 'हायर एण्ड फायर' (यानी जब चाहो काम पर रखो, जब चाहो निकाल बाहर करो) की तर्ज पर श्रम कानूनों में परिवर्तन। सरकार भी ऐसा ही करना चाहती है और चोर दरवाजे से कर भी रही है। कुशल कांग्रेसी खिलाड़ी जोर का झटका धीरे से देना चाहते हैं।

दूसरे श्रम आयोग की रिपोर्ट आने के बावजूद पूँजीवादी हलके से तरह-तरह के सुझाव आते जा रहे हैं। इधर विश्व की जानी-मानी सलाहकार कम्पनी मैकिंसे ने इस दिशा में आठ सूत्री सुधार का एजेण्डा पेश किया है तो टेक्सटाइल बोर्ड ऑफ ट्रेड ने भी श्रम सुधार की सिफारिश पेश की है।

मैकिंसे का मानना है कि भारत कम लागत पर कुशल व दक्ष श्रमिकों का अड्डा है, लेकिन विदेशी निवेश आकर्षित करने में काफी पीछे है। विशेष रूप से उत्पाद और सेवा के क्षेत्र में। इस सलाहकार कम्पनी के अनुसार इसकी मूल वजह श्रम सुधारों में कमी है। उसका मानना है कि बुनियादी क्षेत्र के दूरसंचार, बन्दरगाहों और राजमार्गों का उन्नयन तो हुआ है लेकिन बिजली, जल, सीवरेज, रेलवे, हवाई अड्डों आदि की स्थिति अच्छी नहीं है (यानी इन क्षेत्रों का भी निजीकरण तेज गति से हो!)।

उसने भारत में राजनीतिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों के लिए आठ सूत्री सुधार एजेण्डा पेश किया है, जिसमें श्रम, निजीकरण और खुदरा क्षेत्र शामिल हैं। श्रम सुधारों के बारे में अपनी रिपोर्ट में उसने कहा है कि विनिर्मित उत्पादों के निर्यात में तेजी से बढ़ोत्तरी की जानी चाहिए। सरकार को सभी कार्यों के लिए ठेका श्रम के लिए अनुमति देनी चाहिए। इसके साथ ही वह कानून भी रद्द कर देना चाहिए जिसमें 100 से ज्यादा श्रमिकों वाली कम्पनी में छँटनी के लिए सरकार से अनुमति लेने का प्रावधान है।

निजीकरण के बारे में मैकिंसे ने इण्डियन पैट्रोकेमिकल्स, हिन्दुस्तान जिंक, बाल्को, बी.एस.एन.एल. की राह पर चलने की सलाह देते हुए सरकार को राजनीतिक विरोध के मद्देनजर ट्रस्ट या विशेष उद्देशीय कोष (एस.पी.वी) गठित करने पर जोर देने को कहा ताकि निजीकरण की राह आसान बन सके। इसके साथ ही उसने भूमि के पट्टे को आसानी से कम्पनियों को उपलब्ध कराने और स्टाम्प शुल्क की ऊँची दरें कम करने का सुझाव भी दिया है।

इधर अपैरल एक्सपोर्ट प्रमोशन कांउसिल (ए.ई.पी.सी.) के सेक्रेटरी जनरल के.के. जालान ने सरकार द्वारा सौ फीसदी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई.) की अनुमति देने के बावजूद टेक्सटाइल क्षेत्र में अभी तक विदेशी निवेश नगण्य होने का कारण श्रम कानूनों की कठोरता बताया है और इसे लचीला करने की माँग की है।

बोर्ड ऑफ ट्रेड के टेक्सटाइल क्षेत्र पर गठित विशिष्ट समूह ने भी व्यापक श्रम सुधारों की सिफारिश की है। उसके अनुसार भारत में भी श्रीलंका की तर्ज पर कांट्रैक्ट लेबर की अनुमति मिलनी चाहिए। साथ ही मजदूरों से सप्ताह में 60 घण्टे काम लेने की कानूनी छूट, यूनियनों में शामिल दो तिहाई कर्मचारियों के अनुमोदन के बाद ही हड़ताल की इजाजत का प्रावधान हो। यही नहीं, इस समूह की यह भी माँग है कि (और बहाना बनाया है राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कानून का) टेक्सटाइल क्षेत्र में साल भर में 60 रुपये दिहाड़ी पर सौ दिन रोजगार देने (और बाकी समय बैठाये रखने की मनमर्जी!) की सुविधा मिले।

इन सारी बातों और सुझावों का एक ही अर्थ है, एक ही निहितार्थ है–पूँजीपतियों को मजदूरों से बेरोकटोक मनमाफिक काम लेने और खुले आम लूट की पूरी छूट प्राप्त करना। वैश्विक लूट का खुला खेल फर्रुखाबादी। संग्रग सरकार भी यही चाहती थी, राजग सरकार भी यही चाहती है–सभी पूँजीवादी पार्टियाँ यही चाहती हैं। लेकिन सम्भावित विरोध (जिसकी सम्भावना क्षीण-सी रह गयी है) के मद्देनजर सरकार बड़े ही इत्मिनान और शातिराना तरीके से इसे अंजाम देना चाहती है।

सलाहकार समूह की कुछ सिफारिशें

• कांट्रैक्ट लेबर की अनुमति मिले • मजदूरों से सप्ताह में 60 घण्टे काम लेने की कानूनी छूट • दो तिहाई कर्मचारियों के अनुमोदन के बाद ही हड़ताल की इजाजत • साल में 60 रुपये दिहाड़ी पर सौ दिन रोजगार देने (और बाकी समय बैठाये रखने की मनमर्जी!) की सुविधा मिले

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः डा. दूधनाथ, मुकुल • सम्पादकीय पताः 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण हेम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ